पुनर्जागरण

नव निर्माण के आयाम

गणेश [illegible]

प्रज्ञा भारती प्रकाशन
रानी बाजार,
बीकानेर (राज.)

पुनर्जागरण



संजीव कश्यप

प्रज्ञा भारती प्रकाशन
पोकर क्वार्टर्स, रानी बाजार
बीकानेर (राज.)

प्रथम संस्करण : 1991
मूल्य : पचास रुपये मात्र
मुद्रक : नवज्योति प्रिंटर्स, 1 न्यू रामपुरिया कटला, कोट गेट के अन्दर, बीकानेर
आवरण : अमित भारती

PUNARJAGARAN BY SANJIV KASHYAP Rs. 50/–

समर्पण



प्रेरणा स्रोत

पिताश्री अमरनाथजी कश्यप

को

सादर समर्पित ।

भूमिका

सत्य, धर्म, ईश्वर, मानव आदि के सम्बन्ध में भारतीय मनीषा ने प्राचीन काल से ही बहुत गहन, गम्भीर और व्यापक चिन्तन किया है। वेदों और उपनिषदों में दर्शन की रहस्यमय गुत्थियों को उजागर करने के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन के सत्य को भी विविध प्रकार से समझाया गया है। एक ही सत्य है, विद्वान उसे विविध नामों से पुकारते हैं—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'

ऋग्वेद 1/164/46

ऋग्वेद में ही कहा गया है कि सत्य का मार्ग सुख से गमन करने योग्य, सरल है —

'सुगा ऋतस्य पन्था:'

मनुस्मृति 'सत्य' को नीति से जोड़ती है—

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'

(सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, किन्तु जो अप्रिय लगे, ऐसा सच्च हो तो भी न बोलना चाहिए)। सत्य का साक्षात्कार सरल नहीं। ईशावास्य उपनिषद् में कहा है कि सत्य का मुख स्वर्ण पात्र से ढका है। सत्य धर्म देखने के लिए हे पूषन् उसे तू हटादे —

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

ईशावास्य—15

मुण्डकोपनिषद् ने सत्य की जीत घोषित करते हुए कहा है कि सत्य ही विजयी होता है, झूठ नहीं क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्य से परिपूर्ण है —

'सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः

मुण्डक 3/1/6

'धर्म' के सम्बन्ध में जितना चिन्तन भारत में हुआ है, उतना शायद ही किसी अन्य देश में हुआ हो। धर्म शब्द 'धृ' (= धारण करना) धातु से बना है। धर्म से ही सब प्रजा बंधी हुई है अतः जिससे सब प्रजा का धारण होता है वही धर्म है। समग्र वेद धर्म का मूल हैं —

'वेदो ऽखिलो धर्मंमूलम्'

धर्म समस्त विश्व का आधार है—

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'

महाभारत में कहा गया है कि जो धर्म दूसरे धर्म का विरोध करता है वह धर्म नहीं कुधर्म है। मनु-स्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं—

धैर्य, सहिष्णुता, मन पर नियन्त्रण, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि व विद्या को साथ रखना, सत्य बोलना, क्रोध न करना।

यों धर्म का अर्थ कर्त्तव्य भी किया जाता है।

धर्म शास्त्रों में 'धर्म' शब्द का प्रयोग प्रायः नैतिकता या नैतिक आचरण के लिए किया गया है। हमारे यहां चार पुरुषार्थों में एक 'धर्म' है। धर्म का ज्ञान श्रुति से होता है। मानव के कल्याण में सक्षम श्रुति प्रतिपादित उपाय ही धर्म कहलाता है।

आर्य जाति भारत की सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन जाति मानी जाती है। आर्य जाति का प्रारम्भिक दृष्टिकोण सतोगुणी व सर्वांगीण जातीय था जो सामूहिक प्रगति को मुख्य लक्ष्य मान कर चलता है। ऋक् संहिता के अन्तिम मन्त्र में कहा है कि तुम लोगों का हृदय समान हो, संकल्प समान हो, मन समान हो, जिस प्रकार तुम्हारा यह साहचर्य्य बहुत सुन्दर बन सके—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासाति॥

ऋ. 10/191/4

यजुर्वेद में कामना की गयी है कि ईश्वर की ऐसी कृपा हो कि हमें कल्याणकारी वचन ही सुनने को मिलें व कल्याणकारी दृश्य ही देखने को मिलें—

भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवा
भद्रं पश्यमाक्षभिर्यं जत्राः
यजु. 25/12

आर्यों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का दृष्टिकोण अपना कर सब के योगक्षेम की मंगल-कामना की—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग भवेत् ।।

इस सुख को पहचानने के लिए आवश्यक है कि हम यह जानें कि 'भूमा' में ही सुख है, अल्प में सुख नहीं है—

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति'
छान्दोग्य उपनिषद् 7/23

हमारे देश में जब तक यह उदात्त दृष्टि जीवन का मार्ग-दर्शन करती रही, राष्ट्र की समृद्धि, उन्नति और विकास का पथ प्रशस्त रहा पर ज्यों ही इस चिन्तन में बदलाव आया, हमारा समाज विभिन्न प्रकार के व्यामोहों से ग्रस्त होकर दुर्बल और जर्जर बन गया ।

'पुनर्जागरण' श्री संजीव कश्यप के विभिन्न अवसरों एवं विभिन्न स्थानों पर दिये गये भाषणों का संग्रह है । इसमें 9 भाषण हैं जो विभिन्न विषयों पर हैं पर इनमे प्रधानतः सत्य, धर्म, ईश्वर, कर्म, मानव आदि पर विचार किया गया है । यो तो हजारों वर्षों से इनके सम्बन्ध मे देश-विदेश मे विचार, चिन्तन, मनन होता आया है पर वर्तमान में इनके स्वरूप एवं प्रासंगिकता का ज्ञान अत्या-वश्यक है । एक ओर समाज मे प्राचीन रूढ़िया हैं तो दूसरी ओर वैज्ञानिक विकास । मनुष्य चांद पर उतर गया है और अन्य ग्रहो की यात्रा की तैयारी कर रहा है फिर भी आज के रक्त-पात, हत्या-काण्ड और नर-सहार को देख कर ऐसा नही लगता कि आदिम युग के बर्बर मानव में कोई अन्तर आया है । सभी धर्म प्रवर्तकों ने प्रेम और भाईचारे की बात कही पर उनके जाते ही उनके

अनुयायियों ने उनके चरण-चिह्नों पर पत्थर की पादुकाएं रख दीं। सत्य का लोप हो गया और आडम्बरों ने धर्म की जगह ले ली। अपने आपको जानने-आत्म-साक्षात्कार करने की बात प्रायः सभी धर्म गुरुओं ने दोहरायी पर आज का मानव वैज्ञानिक विकास की अन्धी दौड़ में इसे भूल गया। 'सत्य की अनुभूति' में लेखक वर्तमान दुर्दशा के कारणों का विश्लेषण करते हुए कहता है, 'कभी हमने अपने आपको जानने की-पहचानने की कोशिश ही नहीं की जबकि सभी पैगम्बरों ने आत्म सुधार की बात कही।' उसका मत है कि अपने भीतर के सत्य को पहचानने से ही प्रत्येक मानव का सुधार और संसार का भला संभव है।

ईश्वर साकार है या निराकार? क्या ईश्वर, अल्ला, गॉड आदि सब एक हैं और उनमें केवल नाम भेद है? विभिन्न धर्मावलम्बी फिर क्यों एक दूसरे का विरोध करते हैं और आपस में टकराते हैं? ये कुछ प्रश्न हैं जिन्होंने लेखक के युवा एवं जिज्ञासु मस्तिष्क को झकझोरा है। उसने प्राचीन भारत के वाङ्मय की ओर संकेत करते हुए माना है कि सम्पूर्ण जगत में एक ही सत्ता काम कर रही है कहीं कोई भेद नहीं है। सारी सृष्टि के कण-कण में उसका वास है पर यह सत्य उसी को उजागर होगा जो विनय-भाव लिए हुए हो। जिस व्यक्ति में अहंकार का स्फोट हो रहा हो वह उस परम सत्ता का कभी साक्षात्कार नहीं कर पाता। वर्तमान व्यक्तिवादी दृष्टिकोण जो 'स्व' के घेरे में बन्द रहता है, पर व्यंग्य करते हुए लेखक 'संसार ही मूर्ति है ईश्वर की' में कहता है, 'सृष्टि को जानने की व स्वयं को पहचानने की बात तो दूर की है, हम तो घर, परिवार व पड़ौसी से भी हृदय से बात नहीं करते हैं।'

इन भाषणों के अधिकांश विषय अध्यात्म अथवा नैतिकता से सम्बन्धित हैं। लेखक ने जो कुछ कहा है वह उसके अध्ययन—मनन के साथ उसके अनुभूत सत्य को भी आधार बनाये हुए है। कहीं-कहीं तो वह अपनी बात को बिल्कुल मौलिक रूप में प्रस्तुत करता है जैसे 'कर्म परायणता' में— 'शरीर एक पड़ाव है, आत्मा रूपी यात्रा का। धर्म सीढ़ियां हैं, अपने आप को पहचानने की। इस यात्रा के दौरान किये जाने वाले कर्मों से ही सम्भावना है भविष्य में पृथ्वी के स्वर्ग या नरक बनने की।' कितने थोड़े शब्दों में एक बड़े सत्य को अभिव्यक्ति दी गयी है, यह द्रष्टव्य है।

श्री कश्यप की विचारधारा किसी धर्म-विशेष या स्थान-विशेष से बंधी हुई नहीं है। उनकी वाणी जब सत्य का साक्षात्कार करती हैं तो बुद्ध, महावीर, सुकरात, कन्फ्युशियस, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब आदि सभी तत्त्व-चिन्तकों की लोक-मंगलकारी शिक्षाओं के प्रति सम्मान प्रकट करती है। एक सामान्य और अनजान व्यक्ति को इनके सम्बन्ध मे नई जानकारी मिलती है और उसका दृष्टिकोण उदार एव व्यापक बनने की संभावना बढ जाती है। इन महापुरुषों ने अपने जीवन में जिस अनुभूति को परख कर पावन उपदेश दिये वे शाश्वत बन गये। उन्होंने मनुष्य को राग द्वेष, घृणा-बैर आदि द्वन्द्वों से मुक्त होकर एक विराट् दृष्टि-फलक दिया। आज के मनुष्यों मे देश, धर्म, भाषा, आदि की जो दीवारें खड़ी हो गयी हैं उनको तभी ध्वस्त किया जा सकता है जब हम इन महापुरुषों के चरित्र से करनी-कथनी की एकता ग्रहण करें। केवल उच्चारण से नहीं, बल्कि आचरण से उस दिव्य-ज्ञान को अपने जीवन मे उतारें।

वर्तमान समाज, राष्ट्र और विश्व मे होने वाले संघर्ष, संहार और विनाश से लेखक का मन अति-आलोड़ित एवं आन्दोलित है। उसने अपने अन्तर की पीड़ा व्यक्त करते हुए भविष्य के लिए मार्ग-दर्शन किया है। मनुष्य मनुष्य बने, अपने को जाने, अहं को त्यागे, सर्वत्र उसी प्रभु के दर्शन करे, त्याग का मार्ग अपना कर 'सर्व हिताय सर्व सुखाय' कर्म करे, तभी उसे परम सत्य की, परम तत्त्व की प्राप्ति होगी, यह उद्घोष है 'पुनर्जागरण' मे। मैं लेखक को बधाई देता हूं और मंगल-कामना करता हूं कि उनकी सम्यग् दृष्टि भविष्य में और भी अमूल्य मौक्तिक प्रस्तुत करेगी।

—चन्द्रदान चारण

26 जनवरी, 91

—: अनुक्रमणिका :—

सत्य की अनुभूति

जो अपने आप को नहीं जानता वह सारे जगत में छुपे सत्य को कैसे जान सकता है. जबकि संसार की सभी सुन्दर पुस्तकें जिन्हें हम धर्म की किताबें कहते हैं वे सभी अपने आप को जानने मे सहायक हो सकती हैं, ऐसा सभी प्रज्ञा पुरुषों ने भी कहा है, पर वह आत्म–साक्षात्कार के बाद ही। मगर लगता नही की हम अपने प्रज्ञा पुरुषों को कभी याद करते हैं, या अपने धर्म ग्रन्थों को जरा भी ध्यान देकर पढ़ते हैं। सच मे इस संसार की आज जो दुर्दशा है. उसे देखकर पूरा विश्वास करना पड़ता है कि ससार में रहने वाले प्राणी बड़े ही असामाजिक प्राणी हैं, जिनका अपने धर्म ग्रन्थो मे, अवतारों में जरा भी विश्वास नहीं है। आज तक का इतिहास गवाह है, कितने युद्ध इस पृथ्वी पर धर्म के नाम पर लड़े गये हैं।

जीसस यदि आज वापस हमारे बीच आ जायें और वेटिकन के पोप से मिलें तो शायद चौंक जायें। शायद उन्हें विश्वास ही न हो कि यह मेरे द्वारा बताये गये रास्ते पर चलने वाले लोग है। यदि राम वापस आ जायें तो चौंक जायें यह देख कर कि क्या इतने लोग मेरे आदर्शों पर चलने आयें है या सिर्फ मन्दिर प्राप्त करने। राम को जरूर इस बात की अनुभूति होगी कि उनके द्वारा बताये गये आदर्श तो खो गये हैं कहीं। यदि बुद्ध इस धरा पर वापस आ जायें तो दंग रह जायें यह देख कर कि ये मेरे अनुयायी क्या कर रहे हैं। मैंने तो मूर्ति पूजा का विरोध किया था और आज दुनिया में सबसे ज्यादा मेरी ही मूर्ति पूजा। यदि महावीर आ आयें तो देखें कि मैंने तो संग्रह न करने की बात कही थी, लेकिन आज दुनिया में सबसे अधिक धनवान जैनी हैं। संचय की ऐसी प्रवृति कहाँ से आ गयी इन मेरे भक्तों मे। फिर जीसस, राम, बुद्ध व महावीर चारों मिलकर भी इन्हें वह रास्ता दिखाना व समझाना चाहें जो उन्होने कभी बताया था। तब भी ये लोग समझेंगे या मानेंगे तो वही जो इन्हें समझना

है। ठीक उसी तरह जिस तरह कृष्ण अर्जुन को कुछ समझाना चाहते हैं, लेकिन अर्जुन बार-बार समझता वही है जो वह समझना चाहता है। आदमी वही समझता है जो आदमी का मन कहता है। वह किसी भी बात को घुमा-फिरा कर अपने मन के अनुरूप बना लेता है और वास्तविक सत्य को भूल जाता है। इन्सान अपना सारा जीवन इसी प्रकार सोया रहकर ही निकाल देता है।

बहुत पुरानी बात है। एक बार किसी ने फूल से कहा कितनी खुशबू है तुम में ? भला, इस धरा पर तुम से अधिक सुवासित कौन होगा? लेकिन फूल समझदार था, अपनी सुगन्ध का अहम नहीं था उसे। कहने लगा मैं तो कुछ भी नहीं, धरती की सुगन्ध मुझमें श्रेष्ठ है। मैं तो इसी धरती पर जन्मा हूं, इसी में मिल जाऊंगा। मैं तो इसी मिट्टी का एक अंश हूं, मेरी खुशबू भी धरती की अनन्त खुशबू का एक हिस्सा है। धरती सागर है, तो मैं तो उसकी एक बूंद हूं। जब धरती से यह बात पूछी गयी तो उसने भी बड़ी समझदारी का परिचय दिया। उसमें भी अहम भाव न था। धरती ने कहा, अरे मैं तो बिल्कुल बंजर हू असली खुशबू तो इन मेघों की है। जब ये मेघ प्रेम से गरजते-बरसते हैं तब मेरी माटी से भीनी-भीनी, सौंधी-सौंधी खुशबू आती है। यह खुशबू तो मेघों की देन है। यह सारी मेहरबानी तो मेघों की है। जब मेघों से पूछा गया तो वे बोले, अरे नहीं, हम तो कुछ भी नहीं जो कुछ है, सब इन्द्र हैं, क्योंकि जो कुछ होता है सब इन्द्र के इशारे से होता है। हम तो सिर्फ उनके आदेश का पालन करते हैं। जिधर भी वे इशारा करते हैं उधर ही खुशबू फैल जाती है। जब इन्द्र से पूछा गया तो उन्होंने भी बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया, नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं, पृथ्वी के पालनहार तो विष्णु हैं, उन्होंने ही सम्भाल रखा है सबको। जब विष्णु से यह बात पूछी गयी तो उन्होंने बताया, अरे नहीं, इसमें मेरा कुछ भी नहीं, सृष्टि निर्माता तो ब्रह्मा है। उन्हीं ने बनाया है सबको। इस दुनिया मे जितनी भी गंध है, वह सब उन्हीं के कारण है। अब ब्रह्मा से इस विषय मे पूछा गया तो वे मुस्कराते रहे, सिर्फ मुस्कराते रहे, फिर बोले, मैंने क्या किया है, कुछ भी तो नहीं। हाँ, मैंने मनुष्य बनाया है। और बस यही मेरी महिमा है। मैंने तुमको बनाया है और बस जो गंध है, खुशबू है, वह सारी खुशबू मनुष्य में ही है।

जब मनुष्य ने यह सुना तो उसका अहम बढ़ गया। उसे लगा कि दुनिया की सारी खुशबू तो मुझ में है। फिर वह घमंड से भरकर बोला, सारी गंध तो मुझ मे है, बाकी सब तो मूर्ख हैं, मैं ही सबसे अधिक गंधवान हूं।

इन्सान के परम-गंधवान होने की बात तो सही है लेकिन, बाकी सब मूर्ख हैं। मनुष्य का यह कहना ब्रह्मा को बहुत बुरा लगा। यही बात ब्रह्मा को चुभ गयी। उन्होंने मनुष्य को श्राप दिया कि जो कुछ मैंने तुम्हें बताया है उसे तू भूला रहेगा। उसे तू तभी जान सकेगा जब तू अपने अहम का सर्वनाश करेगा।

कहानी कैसी भी हो पर इसमे सार की बात अद्‌भुत है। इन्सान के अहम ने मिटा दिया उसे। तुच्छ व छोटी-छोटी बातो मे उलझ कर वास्तविक सत्य को भुला दिया, हम मानवों ने। अब ईसाई मिशनरियाँ प्रचार-प्रसार पर करोड़ो अरबों डालर खर्च करके सम्पूर्ण विश्व में अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने में लगी हैं। वही मुसलमान पैगम्बर के पैगाम को दुनिया मे फैलाने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार हैं। वहीं अन्य सम्प्रदायों के लोग भी इसी तरह के प्रयासों मे संलग्न हैं। कहां जा रहे हैं हम? जरा सोचें, एक क्षण रुक कर, तसल्ली से। सोचें, यदि पृथ्वी पर सभी वाद खत्म हो जायें और एक वाद पृथ्वी पर रह जाये तब भी वह अकेला धर्म या मानवता के हित मे कोई कार्य नही करेगा। वैसे भी यह होना असम्भव है फिर भी हम मान लेते हैं कि यदि ऐसा हो जाये तो भी हम करेंगे तो वही जो वर्षों से करते आ रहे हैं। सच पूछें तो ये एक खतर-नाक और गलत राह पर बिना विवेक के चलने वाले वे अन्ध भक्त है जिन्होंने किन्ही भी कारणो से अपने आप को पहचानना छोड़ दिया है।

जहां तक धर्म का सवाल है धर्म तो वह है जिसमे इन्सान सत्य को खोजता है और अपने दुष्कर्मों का त्याग कर अपने सत्कर्मों की वृद्धि कर इस पृथ्वी को अधिक सुन्दर बनाने में लग जाता है। लेकिन लगता नही कि यह पृथ्वी धार्मिक लोगों की है, जिस पृथ्वी पर करोड़ो लोग दो जून रोटी के मोहताज रहें, हजारों हत्याए व बलात्कार हों। उन्हें देखकर तो नही लगता कि हम जरा भी सभ्य हुए हैं। ऐसे अत्याचारों को देख कर नहीं लगता कि पृथ्वी कभी ऐसी रही

थी जब यहां कोई दुष्कर्म नहीं होता हो क्योंकि जिस काल को हिन्दुस्तान में सत्ययुग कहा जाता है, उसी काल में रावण ने अपहरण किया था सीता का. उसी काल में मारीच व ताड़का जैसी असुर शक्तियां विद्यमान थीं, उसी काल में बाली जैसा शक्तिशाली राजा हुआ जिसने बलात् प्रयोग से अपने छोटे भाई की पत्नी का हरण कर रखा था। उसके बाद के युग में भी कृष्ण के समय में ही कंस हुआ था और महाभारत भी। भीष्म पितामह, कुल गुरु, द्रोणाचार्य व उस युग के सभी गणमान्य लोगों व पांच-पांच पतियों की उपस्थिति में ही हुआ था द्रोपदी वस्त्र हरण। तब भी विद्यमान था दुर्योधन व दुशासन। हमारे ही देश में नहीं अन्य देशों में भी कभी ऐसा समय नहीं रहा जब सारी पृथ्वी सत्वृति के लोगों की रही हो। वरना सुकरात को क्यों पिला दिया जाता जहर का प्याला। क्यों जीसस को सूली पर चढ़ा दिया जाता। गांधी व अब्राहम जैसे आदमियों की क्यों की जाती हत्या। क्यों होते आधुनिक युग में प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध। इसका कारण एक मात्र यही है कि हमने सदैव दूसरों को देखा, उन्हीं के अनुसार तय किया हमने अपना रास्ता भी। कभी हमने अपने आप को जानने की-पहचानने की कोशिश ही नहीं की। जबकि सभी पैगम्बरों ने आत्म सुधार की बात कही, सत्कर्मों की बात कही, इस धरा के माहौल को सुन्दर बनाने की बात कही। कारण, हर युग को ऐसे महापुरुषों की आवश्यकता थी जो प्रकाश का दीपक जला सकें। महापुरुषों ने ऐसे प्रयास भी किये और उनके अच्छे प्रभाव भी हुए लेकिन उनके न रहने पर शनै-शनै फिर बुराइयां बढ़ने लगीं और हम रह गये मात्र लकीर के फकीर। यही कहते रहे, हमारा प्राचीन गौरव बहुत उच्च था, गाते रहे, प्राचीन कथाओं पर गर्व करते रहे। साथ ही पतन की गर्त में भी समाते रहे। कई बार बड़ी हंसी आती है जब लोग यह कहते सुनाई देते हैं कि हम विश्व के आध्यत्मिक गुरु हैं। लोग भी बड़ी रुचि से ऐसी बातें सुनते हैं। इसी का कारण तो मात्र इतना है कि विश्व में भ्रष्टतम आदमी भी हमारे देश के ही माने जाते हैं। क्योंकि सारी दुनिया में लोग बातें इस प्रकार की करते हैं मानो उनका ईश्वर में अटूट विश्वास हो, और जीते इस प्रकार हैं मानो उनके ख्यालों में भी ईश्वर की कल्पना तक न रही हो। यही शायद हमारा दुर्भाग्य है।

ऐसे दायरों में कैद है आदमी, जिन्हें तोड़ना सब लोगों के लिये सम्भव नहीं क्योंकि गर्भावस्था में ही हम धर्म से बन्ध जाते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई पारसी, यहूदी, जैन, बौद्ध आदि जन्म से पहले ही हो जाते हैं। पृथ्वी पर पहली सांस ली जाने से भी बहुत पहले हमारी बिना अनुमति के लिए जाता है एक दायरा। न ही हम लोग इस संसार में किसी से पूछ कर आते हैं न ही हमारी मृत्यु अपनी मरजी से होती है क्योंकि जन्म–मृत्यु के साथ धर्म भी जन्म पर ही निर्भर करता है।

लेकिन सत्य यह है कि हर इन्सान एक-सा है। उसके खून के रंग में कोई भेद नहीं, उसके जन्म लेने के तरीके व मरने के तरीके में कोई भेद नहीं। जिसको भी जीवन मिला है मौत उसकी निश्चित है। हर इन्सान स्वतन्त्र रूप से अकेला यहां आया है और अकेला यहां से जायेगा भी। पृथ्वी किसी की भी बपौती नहीं। प्रत्येक इन्सान एक निश्चित समय का यात्री मात्र है। दुनिया में प्रत्येक इन्सान की अपनी अलग छवि है, अलग प्रतिमा है।

इसी परिणाम स्वरूप एक बड़ी जोरदार कल्पना की गयी है हमारे यहां। हमारे देश में सदैव उतने ही देवता रहे हैं जितनी इस देश की जनसंख्या रही है। 33 करोड़ की जनसंख्या होने पर देवता भी 33 करोड़ ही थे और अब 84 करोड़ की जनसंख्या होने पर देवता भी 84 करोड़ हो हैं। यानि प्रत्येक मानव में देवत्व की कल्पना की गयी है। बात ठीक है, एक जैसी चेतना है सभी में। अब हमने न तो इस संख्या में से मुसलमानों को अलग किया, न ही, पारसियों को, न ईसाइयों को, क्योंकि चेतना तो सभी में है। अतः किसी भी जाति, का, धर्म का व्यक्ति उसे अनुभूत कर सकता है, उसे समझ सकता है, अपने को पहचान सकता है, अपने भीतर के सत्य को जान सकता है।

भीतर की खोज पूरी होने के बाद ही हमारा बाहरी ज्ञान भी हमारे काम आयेगा। यदि दुनिया भर के वैज्ञानिक अपने भीतर की खोज कर अपने आविष्कार करते तो वे विध्वंसक हथियार नहीं बनाते। उनके सम्पूर्ण अनुसंधान मानवीय सन्दर्भों में सहायक होते। यदि भीतर के सत्य को इन्सान ने जाना होता तो संसार की भयावह लड़ाइयां होने से पहले ही शांत हो गयी होतीं।

यदि सभी धर्मों के अनुयायियों ने अपने भीतर के सत्य को जाना होता तो ईसाई यह भी जानते कि जीसस ने यह भी कहा था कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मार दे तो तुम उसके सम्मुख अपना दूसरा गाल भी प्रस्तुत कर दो। कहाँ मिलेगा ऐसा अहिंसा का पुजारी जिसने उन लोगो के लिये ईश्वर से क्षमा मागी जिन्होंने उसे सूली पर चढ़ा दिया। मगर हमने जीसस को जाना कहां? हमने तो सिर्फ ईसाइयत को माना। अगर जीसस को जाना होता तो ईसाई और पादरी मन्दिरों व मस्जिदों के आगे गालियां देते न घूमते। यदि मुसलमानों ने अपने भीतर की खोज की होती तो वे तब तक चैन से न सोते जब तक उनके पड़ोसी का पेट न भर जाता। कहां मिलती है ऐसी आत्मीयता मुसलमानों में। वे भी उलझे हैं सिया-सुन्नी विवाद में। पांच समय की नमाज अदा करने वालों का अपने ही भाइयों से इतना द्वेष। आत्मीयता की कहां तो पराकाष्ठा है कि कोई भाई भूखा भी नही होना चाहिये, कहां हम अपने उसी भाई की इहलीला समाप्त करने से भी नहीं हिचकते हैं। शायद हम पैगम्बर को भूल गये, सिर्फ मुसलमान होकर रह गये। बुद्ध ने बाल्य अवस्था में ही इस बात का समर्थन किया था कि मारने वाले से बचाने वाले का अधिकार अधिक होता है पर कितने ही ऐसे बौद्ध हैं जो शिकार भी करते हैं और मांस भी खाते हैं। उन्हे बुद्ध की कही गयी बात का ख्याल ही नही रहता, लेकिन वे बौद्ध भिक्षु हैं। बुद्ध को भूले हैं वे, और बौद्ध धर्म को पकड़े हैं।

आर्यों मे पहले मूर्तिपूजा नहीं होती थी लेकिन गुरु आश्रमों में क्योंकि बच्चों को शिक्षा देनी होती थी अतः निराकार ब्रह्म को समझाने हेतु प्रतीक के रूप मे मूर्तियों की स्थापना की जाने लगी ताकि बालक उस एक मात्र सत्ता के स्वामी को, उसकी शक्ति को पहचान सकें। प्रयोग के रूप मे शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाकर चमत्कारिक सिद्धियां भी दिखाई जाने लगीं ताकि बच्चों में कुछ अधिक जानने की उत्सुकता हो। लेकिन धीरे-धीरे हमने इन्हीं साधना पथ के सोपानों को मंजिल मान लिया और उस सर्वशक्तिमान को पहचानने की कला को भूलते चले गये। अतः देश मे अच्छे गुरु आश्रमों का अभाव हो गया। धीरे-धीरे ये आश्रम लुप्त से हो गये। अब जो शिक्षण संस्थान हैं

वे कहीं भी हमें नैतिक व चारित्रिक गुणों से नही जोड़ते। गुरु आश्रमों मे जो भिक्षा ली जाती थी अब साधुओं के लिए सिर्फ वही दान हो गयी। धीरे-धीरे तो भिखारियो ने भी साधु के बाने पहनने शुरू कर दिये। आज भी ऐसे साधुओं की संख्या साठ लाख के करीब है जो सिर्फ स्वाधु हैं, जिनका उद्देश्य कुछ भी नहीं है। इतनी बड़ी संख्या भिखारियों की होने के परिणाम स्वरूप ही वास्तविक साधुओं को पहचानना भी मुश्किल हो गया जिनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

वस्तुतः जीसस, मुहम्मद, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, लाओत्से जैसे विचारक बहुत नेक थे। सभी ने कुरीतियों का उन्मूलन किया। एक अच्छे व स्वच्छ समाज की स्थापना मे अपना सभी कुछ समर्पित कर दिया। इन सब का समाज मे एक विशेष महत्व है। लेकिन हम लोग सिर्फ लकीर के फकीर रह गये। न हमने समाज को कोई नया सोच दिया, न स्वयं को जाना, न अपने ही समाज का भला किया। धर्म कभी बुरा नही होता, लेकिन धार्मिक होने का दावा करने से पूर्व हमें यह तो देखना पड़ेगा न कि हम क्या हैं, हमारे कार्य कैसे हैं, कही हम सिर्फ अन्धानुकरण तो नहीं कर रहे। हम जो कुछ करने जा रहे हैं वे कार्य तो ऐसे नहीं जिनसे मानवता का ही कोई नुकसान हो रहा हो? हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्य मानवता के हित में है या अहित में? जब हम पहले हिन्दू मुसलमान, सिख ईसाई होकर सोचना शुरू करते हैं तब शायद निष्पक्ष भाव से कुछ सोच सकने में असमर्थ हो जाते हैं। तब शायद हमारा दृष्टिकोण दूसरे धर्मों के प्रति सही नही रहता। यह बात जरा ध्यान देने की व गौर करने की है। क्योंकि दुनिया का सबसे कठिन कार्य आत्म मूल्याकन करना है, निष्पक्ष भाव से सोचना है। अपना सही आत्म मूल्याकन करने के बाद जब हम सोचेंगे तो पायेंगे कि आज तक अन्य धर्मों के बारे मे जो कुछ सोचते रहे, कहते रहे, वो सब गलत था। मगर यह तभी सम्भव होगा जब आत्म मूल्यांकन सही होगा, जब भीतर की ज्योत जली होगी। केवल धार्मिक आधार पर ही नही आत्म मूल्यांकन करते समय इन्सान को इस आधार पर भी सोचना चाहिये कि आज तक कौन-कौन सी गल्तियां हुई हैं जिन्हे हमने अपने आप से भी छुपाने की कोशिश की है। वे गल्तियां दुबारा न हों

इसके लिये बड़े सतर्क रहने की जरूरत है, सजग रहने की आवश्यकता है अन्यथा सही आत्म मूल्यांकन हो ही नही सकता। जब हमारे विचार दर्पण जैसे साफ हो जायेंगे जिसमे जैसे हम है वैसा ही हमारा प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगेगा यानि हमे स्वयं यह पता लगने लगेगा कि जो कुछ भी हम कर रहे हैं या करने जा रहे हैं या कर चुके हैं उनमें से कौन-से कार्य सही है कौन-से गलत। जब यह स्पष्ट मालूम होगा जब हम जात-पात को छोड़ निष्पक्ष भाव से सोचना शुरू करेंगे उसी दिन से पूर्णतया परिवर्तित होने लगेंगे।

वस्तुतः संसार के सभी धर्म अच्छे है जरूरत है एक अनुसंधान करने की, धार्मिक शोध करने की, धर्म से जुड़ी हुई कुरीतिया व अंधविश्वास दूर करने की। मानव जाति के सुखों को बढ़ाने के लिये तथा एक श्रेष्ठ जीवन जीने के लिये धर्म बने थे न कि संकीर्ण दृष्टिकोणों के सोच के लिये। रही धार्मिक अनुसधान की बात, धर्म से जुड़ी कुरीतियों के उन्मूलन की बात तो वह तभी सम्भव है जब सभी धर्मों के अनुयायी, सभी आस्तिक व नास्तिक विचार धारा के लोग कोशिश करें अपने भीतर के सत्य को पहचानने की। उनका दृष्टिकोण 'तत्वमसि' जैसा हो। जो तत्व तुम मे है वही मुझ मे। उनके कार्य मानव जाति के उत्थान में सहायक हों न कि संहार मे। फिर हमे न तो हमारे तथाकथित धर्म के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता होगी न ही दूसरे धर्मों की बुराई करने की। क्योंकि जब शुरूआत बाहर से नही भीतर से होगी तो हमारा सर्वप्रथम कार्य अपनी बुराइयों को अपने आप से दूर करने का हो जायेगा। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य भी इसी से जुड़ा होगा हम प्रयास भी इसी बात का करेंगे कि दूसरे भी इसी तरह का प्रयास करके अपनी बुराइयों को दूर करें। व्यक्तिशः सुधार से ही संसार का भला हो सकता है, हमे कुछ भी छोड़ने की जरूरत नहीं, हम जैसे है वैसे ही ठीक हैं। जिस धर्म को मानते हैं उसे भी बदलने की जरूरत नही है। हमे न कोई नया वाद प्रारम्भ करना है न कोई नवीन धर्म की शुरूआत कर उसके अनुयायी बनाने के प्रयास मे जुड़ना है, क्योंकि वर्षों का हमारा अनुभव हर पल हमे यह शिक्षा दे रहा है कि ये धर्म के बड़े-बड़े रास्ते कुछ समय पश्चात छोटी-छोटी पगडंडियों मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी पगडन्डियों मे जिन पर इतने कांटे बिछे हैं कि इन्सान को रास्ता दिखाई

देना ही बन्द हो जाता है। अतः जो धर्म हैं वे ही बहुत हैं। उनकी अपनी समस्याएं बहुत हैं और किसी नवीन धर्म के माध्यम से इन समस्याओं का निदान नही किया जा सकता। जहां हम है, जैसे हैं, बस यूं समझो ठीक हैं। न हमें अपने धर्म को छोड़ना है न उसकी अच्छी बातो को। हां, उन्हे आधुनिक परिवेश मे समझना जरूरी है। साथ ही एक प्रयास भी करना है आत्मलोचन का, अपने भीतर के सत्य को जानने का ताकि प्रत्येक मानव का सुधार हो सके। तभी संसार का भला हो सकता है और यही सर्वशक्तिमान तक पहुंचने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

❀❀

संसार ही मूर्ति है ईश्वर की

यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के चालीसवें अध्याय में ईशावास्योपनिषद् है, जिसका प्रथम मन्त्र ही हमें यह शिक्षा देता है कि 'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है जड़, चेतन वह सब जगत रूप में है। सभी कुछ परम सत्ता से व्याप्त है, आनन्द ही आनन्द है। इस आनन्द का उपभोग इन्सान को त्याग के साथ करना चाहिये। साथ ही उसमें अधिक आसक्त भी नहीं रहना चाहिये क्योंकि उपयोग में आने वाले सम्पूर्ण पदार्थ किसी के नहीं हैं। अतः किसी के प्रति भी हमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये।'

हजारों वर्षों पूर्व भी हमने विश्व के सभी धर्मों को अलग-अलग नहीं मान कर यही माना कि संसार में जो कुछ भी व्याप्त है वह ईश्वर से भिन्न नहीं किया जा सकता है।

आज सम्पूर्ण विश्व विडम्बना युक्त स्थिति के दौर से गुजर रहा है। विभिन्न सम्प्रदायों के परिणाम स्वरूप आज हम मानवों ने अपने आप को अलग-अलग मान लिया है। ऐसा सोचना ही सर्वशक्तिमान के प्रति अन्याय करना है क्योंकि ईश्वर को मानव से अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा ही व्याप्त है इसी परमात्मा शब्द से आत्मा शब्द की उत्पत्ति हुई है।

यद्यपि सम्प्रदायों की उपासना विधि में भेद हैं। उसका कारण भी मात्र इतना ही है कि वह जो सर्वत्र व्याप्त है जिसके लिये बुद्ध कहते हैं कि 'कहीं नहीं' और शिव कहते हैं कि 'सभी जगह'। कारण, जो उसे जिस रूप में देखना चाहता है वह उसे उसी रूप में दिखाई देता है। बुद्ध कहते हैं उसके बारे में पूछो मत, शिव कहते हैं पूछते क्या हो उसे जहां चाहो वहीं खोज लो, जो कुछ है बस वही

है। बुद्ध ने भी, शिव ने भी, दोनों ने उस परम् आनन्द का स्वाद चखा है, दोनों प्रज्ञा पुरुष हैं ।

रास्ता कोई भी हो मन्जिल एक है, भेद रास्ते का है, मन्जिल का नहीं। जब सभी की एक ही मन्जिल है तो रास्तों से फर्क नहीं पड़ता अतः जिसे हम भेद मानते हैं वह भी एक भुलावा है।

इसी तरह कभी-कभी कट्टर मुसलमान कहते हैं जब गजनवी द्वारा सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा जा रहा था तब क्यों नही आया तुम्हारा भगवान। हिन्दू भी सोचने लगता है बात तो ठीक है यदि ऐसा अनर्थ हो रहा था तो आना चाहिये था उसे।

दोनों का सोच गलत है। पहली बात, अल्लाह में व सोमनाथ में कोई फर्क है भला, दोनों एक ही तो हैं फिर कौन आता, किसको बचाने आता। उपासना की धार्मिक अनुष्ठान की विधियाँ चाहे कितनी भी अलग हों लेकिन जो सर्वत्र व्याप्त है वह तत्व तो एक ही है। दुनिया के जितने भी सम्प्रदाय हैं उन सब के द्वारा जितने भी प्रयास किये जा रहे है वह सारे प्रयास एक ही परम तत्व को जान लेने के प्रयास हैं।

यह छोटी-सी बात भी यदि हमारी समझ से बाहर ही कहीं रह जाती है, तो फिर साम्प्रदायिक विद्वेष का जो जहर लगातार देश में फैलता जा रहा है उसकी सारी जिम्मेवारी हमारी ही है। यदि दगों में कोई भी मरता है हिन्दू-मुसलमान सिख, ईसाई तो कौन बचाने आता है ईश्वर या अल्लाह, कोई भी तो नही आता, सिर्फ जान जाती है इन्सान की। एक प्रभु ही मार देता है दूसरे प्रभु को। एक तरफ हम अपने आप को सभ्य कहते है दूसरी तरफ जानवरों से भी बदतर सलूक करते हैं एक दूसरे से। हमारे द्वारा की जाने वाली गल्तियों का खामियाजा भी हमें ही भुगतना पड़ेगा। कभी कोई बचाने नहीं आयेगा, सिर्फ मानव जाति का संहार ही होगा ऐसे कार्यों से। राम व रहीम में कोई भेद होता तो कोई आता मगर जो [illegible] भी है [illegible] रहीम भी है।

विवाद जितने [illegible]

हमारे देश में शहरों व गांवों से दूर कुछ आश्रम हुआ करते थे। जहाँ गुरु अपने शिष्यों को शिक्षित किया करते थे। उनमें से एक युक्ति यह भी थी कि शिष्यों को प्रकृति के साथ जोड़ा जाता था। किसी को किसी जड़ी-बूटी लेने के बहाने हिमालय भेज दिया जाता था, वह भी बिल्कुल अकेला। किसी मानव का कहीं कोई साथ नहीं रास्ते में, यदि कोई साथ हो तो केवल कलरव करते पक्षी का ही। कल-कल बहते झरने का ही। पत्थरों या चट्टानों से टकराकर आता हुआ पानी का स्वर सुनायी दे, कहीं पहाड़, कहीं पहाड़ों की तलहटी में खिले फल और फूल नजर आयें। इन्सान चिल्लाए भी तो पहाड़ों से टकराकर उसी की आवाज़ उस तक पहुंच जाये! दिन में सूर्य की किरणें विभिन्न रूपों में दिखाई दें, उसकी उषामयी लालिमा, प्रकाश की बूंदों से छिटक कर बिखरी रश्मियां, रात्रि में चन्द्रमा की शीतल-सी छटा, तारों की हसीन मेखला। रोज वही तारे, वही चांद, वही सूरज, इन्द्रधनुष, तैरते बादल, बादलों के पार नीला आकाश, प्रत्येक नित्य नये से नया। फिर वह शिष्य देखेगा रोज उन सबके हजारों विभिन्न रूप, उसे लगने लगेगा मानो सम्पूर्ण सृष्टि बोल रही है, बातें कर रही है। फिर कहीं जाकर वह उस सृष्टि के साथ अपने को वहीं जुड़ा पायेगा, उसका सृष्टि के साथ एक तादात्म्य स्थापित होगा। उस एकान्त में जब भी बात करनी होगी वह सम्पूर्ण सृष्टि से ही बात करेगा। बाह्य जगत से जब वह इस तरह से जुड़ जायेगा तब उस एकान्त में उसे सुनाई देगी अपनी आत्मा की प्रखर आवाज। वह अपने भीतर भी उतना ही गहरा जुड़ेगा एक सूक्ष्म जगत से, उस परम आनंद की स्थिति से।

मगर आज हम लोग वर्षों तक तो उगता हुआ सूरज भी नहीं देख पाते। हमारा उठने का समय ही आठ बजे का होता है। दोपहर की शिफ्ट में स्कूलों में बच्चे बारह से एक बजे के बीच प्रार्थना करते हैं। अर्ध-रात्रि तक किताबों में दृष्टि गड़ाये स्कूल का काम करते रहते हैं। गुरु से भी हमारा सम्बन्ध होता है, तो बड़ा हल्का-सा। शिष्य गुरु से कतराता है, गुरु शिष्य से। हम लोगों को अब फुर्सत ही नहीं मिलती चन्द्रमा की शीतल छटा का आनंद लेने की। तारों

को निहारने का तो ख्याल भी नहीं कर पाते इसीलिये कभी सृष्टि से जुड़ नही पाते ।

प्राचीन काल में ऐसी व्यवस्था थी कि आत्म-साक्षात्कार का मौका प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाता था । यह यात्रा प्रत्येक को अकेले करनी पड़ती थी । कोई मित्र, रिश्तेदार, सहयोगी, गुरु कोई भी साथ नही जाता था । सारे धर्म-ग्रन्थ भी कहीं पीछे छूट जाते थे और जो अनुभव होता था जीवन मे, वह श्रेष्ठ था । ज्ञान भी किसी पर आरोपित नही किया जाता था ।

बियावान जगलों मे जंगली जानवरों से अपनी रक्षा स्वयं करनी पड़ती थी । भूख लगने पर कन्द, मूल, फल तोड़कर खाने का इन्तजाम भी स्वयं को ही करना पड़ता था । इस तरह लगातार प्रकृति की गोद मे बड़ी सजगता से रहते-रहते इन्सान निर्भय हो जाता था । निर्भय बनने की शिक्षा लेते समय कभी किसी शिष्य की जान भी चली जाती तो कोई हर्ज नही । हमारा तो सदैव आत्मा की अमरता में विश्वास रहा है ।

शरीर रोज महसूस करता है कि भूख रोज लगती है, फिर शिष्य जान जाता है कि शरीर अन्नमय-कोष है, इतनी-सी बात भी अनुभव द्वारा जानी जाने का विधान था । ऐसा कहना भी गुरु उचित नही समझते थे ।

विश्वामित्र के सन्दर्भ मे एक दंतकथा है । कथा का सार यह है कि विश्वामित्र जैसे तपस्वी ने भी चाण्डाल के घर जाकर कुत्ते का मास भक्षण किया था । बात सच हो या झूठ लेकिन पेट की क्षुधा के अत्यधिक बलवान होने का पता इस बात से जरूर चलता है । यदि ऐसा नही होता तो महावीर भोजन के प्रति यह नहीं कहते कि जितना दोनों हाथों मे आये उतनी खाद्य सामग्री जीवन के लिये उपयुक्त है । न ही सुजाता की खीर का एक ही प्याला बुद्ध पीते । सभी ने ऐसा कुछ न कुछ सोचकर ही किया । किसी ने इन्हे ऐसा करने को कहा नहीं ।

आज भी ऐसा ही होना चाहिये कि प्रत्येक मानव स्वतः ही जान ले कि हमारे कार्यों द्वारा मानवता का हित होना चाहिये, अहित नहीं । प्रत्येक मानव समान है । सम्पूर्ण जगत मे एक ही सत्ता काम कर रही है, कही कोई भेद नही है ।

इन्सान की बात तो दूर जानवर भी हम से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। जरूरत है तो सिर्फ प्रेम व सौहार्द के वातावरण की।

एक प्राचीन कथा है। समुद्र के किनारे एक घुड़सवार दौड़ा जा रहा है। समुद्र के पानी का उछाल दोनों को छू रहा है। आकाश में बादल गरज रहे हैं। हल्की बरसात की बूंदें भी दोनो को भिगो रही हैं। घुड़सवार भी व घोड़ा भी दोनों मस्त हैं। वह घुड़सवार उस घोड़े से न जाने क्या कह रहा है और घोड़ा उसको समझ कर और तेज दौड़ने लगता है। घुड़सवार ने अपनी दोनों बाहों से घोड़े की गर्दन पकड़ रखी है। आनंद मग्न हैं दोनों, साथ ही बातें भी कर रहे हैं। घुड़सवार के मन में जो भी विचार आ रहे हैं, वह घोड़े से कह रहा है। घोड़ा उसका पालन कर रहा है। एक संकेत समझा रहा है, दूसरा हिनहिना कर समझ में आने की स्वीकृति दे रहा है। यही ज्ञान है जो उपनिषद् हमें समझाते हैं कि हम और शेष सृष्टि अलग-अलग नहीं हैं।

सारी सृष्टि मानव मात्र के लिये एक पाठशाला है जो रह-रहकर प्रति पल हमें इस बात की शिक्षा दे रही है कि कहीं कोई अलगाव वाद हो ही नहीं सकता। सारे भेद झूठे हैं।

हजारो वर्ष पूर्व साधक तन्त्र की एक साधना किया करते थे। जिसमें वह सम्पूर्ण सृष्टि को कहीं भूलना चाहते थे। तब सृष्टि महत्वपूर्ण नहीं रहती वरन् परम तत्व महत्वपूर्ण हो जाता है जो सम्पूर्ण जगत् में विद्यमान है। उस समय साधक इस धरती तक को भूल जाता था। अपने आप को ऐसी साधना करते समय साधक शून्य में कहीं स्थापित करता है, फिर धरती भी खो जाती है कही। वह अकेला ग्रह-नक्षत्रो के बीच उन्ही की गति के समान बहता रहता है। यहाँ भी उसका उद्देश्य परम सत्ता को समझना ही होता है। आज भी कुछ लोग हमारे देश में इसी साधना से लाभान्वित हो रहे हैं।

कहाँ तो साधना की ऐसी परकाष्ठा जहां सब कुछ भूलकर उसी तत्व में लीन होते हम और कहा दूसरी तरफ कुछ भी न भूलकर घृणा से-वैमनस्य से भरकर एक दूसरे को मारने-काटने में लगे हैं हम।

उपनिषद् मे एक अन्य कथा का उल्लेख मिलता है। एक गुरु के पास आकर एक शिष्य कहता है, गुरुदेव! मुझे ब्रह्म-विद्या का ज्ञान दें। ऐसा सुन कर गुरु ने उस शिष्य को आदेश दिया कि ये जो आश्रम में पांच गायें खड़ी हैं, जरा इन्हे जंगल में ले जाओ, इनका दूध पीओ इनकी खूब सेवा करो। जब पाच से बढ़ते-बढ़ते इनकी सख्या एक हजार हो जाये तब वापस आना।

आज के युग मे यदि कोई अपने शिष्य से कह दे तो वह अपने मन में विचार करेगा। वाह गुरुजी! मेरे प्रश्न का उत्तर देना तो दर-किनार गया इतने स्वार्थी हो गये कि पांच गायें देकर मेरे जीवन के अनेक वर्ष तबाह करके हजार गायों की लालसा मन मे संजोये बैठे हो।

सच, ब्रह्म-ज्ञानी होने के लिये तो एक-एक गाय को बढ़ते देखना पड़ेगा। अनेकों बछड़े पालने पड़ेंगे। अनेक बार मां-बेटे के ममत्व भाव के रस मे स्वयं को भी डुबोना पड़ेगा। बीमार गायो की सेवा करनी होगी। इन्ही पशुओं से बात करनी होगी। इनमे से कुछ को मरते भी देखना होगा। पांच से हजार होने मे बड़ा समय लगेगा। हर रूप मे इन्हीं गायों के साथ जुड़कर रहना पड़ेगा। तो ऐसा ही किया उस शिष्य ने भी और बहुत वर्षों बाद जब वापस आया तो उसे अब प्रश्न पूछने की आवश्यकता ही न रही। इन वर्षों की स्वच्छन्द मेहनत ने उसे इतना कुछ सिखा दिया कि उसे सब प्रकार की अनुभूति हो गई। एक तार जुड़ गया उसका सृष्टि से। उसे लगा कि गाय-बैल सब मुझ से ऐसे ही जुड़े हैं जैसे मैं सृष्टि से। फिर उसने घोषणा की 'अहम् ब्रह्मास्मि'। गुरु ने भी उससे कहा, 'तत्वमसि' यही तत्व सारी सृष्टि में विद्यमान है लेकिन आज हमारे सारे कनेक्शन टूटे पड़े हैं। सृष्टि को जानने की व स्वयं को पहचानने की बात तो दूर की है, हम तो घर-परिवार व पड़ोसी से भी हृदय से बात नहीं करते हैं। फिर यदि पड़ोस ने में कोई जाति से, सम्प्रदाय से भिन्न हो तो सीमाएं किले की दीवारों से भी अधिक मजबूत हो जाती हैं।

हमारी यह सभ्य संस्कृति जो कुछ बोलती है उसे पहले हम अपने अन्दर कहीं ठीक-ठीक कर लेते हैं। सोच पहले तो हम सोचते नहीं, उल्टा ही करते हैं, जो कुछ भीतर होता है, उसके विपरीत मंगल प्रलाप करते हैं। कभी भी हम

वैसे नहीं होते जैसे दिखाई पड़ते हैं। हमारे व्यवहार में जो कुछ आज दिखाई देता है, वह सब हमारा नाटक होता है। अनिश्चित काल के इस छोटे-से जीवन में न जाने कितने नाटक खेलते हैं हम। भाई-भाई से, पति-पत्नी से, बेटा-बाप से। यह घर के नाटक हैं। फिर समाज में भी वही। पड़ोस में भी वही। ऐसे ही नाटकीय सम्बन्ध हैं हमारे। आप किसी से भी उसके पड़ोसी के बारे में पूछ कर देख लें। सब अपने पड़ोसी को खराब बतायेंगे, कोई अच्छा नहीं बतायेगा। हजारों खामियाँ दिखाई देंगी हमें पड़ोसी में। फिर यही बात हमें सम्प्रदायों में दिखाई देगी। कारण इनके बहुत से हैं लेकिन सब से महत्वपूर्ण है हमारा 'अहंकार' सब अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ बताने में लगे हैं। यद्यपि हम मन्दिर, मस्जिद, गिरजे व गुरुद्वारे में जाकर सिर झुकाते हैं। इस सिर झुकाने का अर्थ भी यही है कि हम अपने अहंकार को त्यागते हैं व प्रभु तेरी शरण में आते हैं जो सर्वत्र है।

उपनिषद् यह भी कहते हैं कि संसार का प्रत्येक मानव यह घोषणा कर सकता है कि मैं ईश्वर हूँ। मगर यह घोषणा अहंकार के साथ नहीं हो सकती व इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि एक व्यक्ति ईश्वर है तो दूसरा नहीं। फर्क इतना ही है कि एक ने अपने आप को जान लिया है, हमें अभी अपने आप को जानना है।

ईश्वर उतना ही श्रेष्ठ है जितनी यह सृष्टि। इसे जरा गहराई से जान लेने की जरूरत है। यदि हम एक धर्म को मानने वाले हैं उसके प्रति हमारी श्रद्धा है तो हम दूसरे धर्मों के प्रति उपहास की दृष्टि से नहीं देख सकते। किसी की आलोचना करने का अधिकार फिर हमें नहीं रह जाता। सृष्टि व ईश्वर दोनों एक दूसरे का पर्याय हैं इनमें तुलना नहीं हो सकती। सृष्टि से सभी लोग समान रूप से जुड़े हैं। सृष्टि से सभी धर्म भी समान रूप से ही जुड़े हैं।

जगत् सदैव परिवर्तनशील है, जड़ भी व चेतन भी। जड़ का रूप परिवर्तित होता रहता है यही चेतना की गतिशीलता का प्रमाण है।

पहाड़ हैं जो पानी के साथ छोटे-छोटे रेत के कणों में परिवर्तित हो रहे हैं। यही पानी नदी का रूप धारण कर समुद्र तक पहुँच रहा है। रास्ते में व समुद्र के पास जहां भी रेत के कण एकत्र हो रहे हैं वहीं चट्टानें बन रही

हैं। सूर्य की गर्मी से समुद्र का पानी हल्का होकर बादलों के रूप में परिवर्तित हो रहा है। यहां रूप बदलने से मतलब ही बादल है। पहाड़ों से टकराकर यही बादल बरस रहे हैं। वही पानी ठण्ड में पहाड़ो पर ग्लेशियर का रूप ले रहा है। यही बर्फ विघल कर पानी बन रही है, यही पानी नदियों के रूप में फिर से समुद्र समुद्र में मिल रहा है।

बीज को जमीन में बोया जाता है। इसी बीज से पौधा व पौधे से वह वटवृक्ष बन रहा है। वह वटवृक्ष समय अनुसार समाप्त हो मिट्टी मे मिल रहा है। जन्म से मृत्यु तक इन्सान मे भी अनेक परिवर्तन हो रहे है कुछ सम्प्रदायों में दाह संस्कार के बाद जो कुछ अवशेष बचते है हड्डियों के रूप में उन्हें नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। वहां वे हड्डियां मच्छलियों व पानी के जानवरों का भोजन बन जाती हैं मच्छियारे उन मछलियों को फिर से पकड़ लेते हैं, वही फिर से हमारा भोजन बन जाती हैं। मानव का मल धरती मे मिल कर खाद्य बन जाता है। धरती पर जो भी वनस्पति उगती है वही खाद्य उस वनस्पति का भोजन बन जाती है। वनस्पति से हमें फिर फलों के रूप मे भोजन, ऑक्सीजन व ईंधन मिलता है। जापान मे तो कुछ वर्ष पूर्व तक सभी मकान लकड़ी के बनाये जाते थे। आज भी हजारों जरूरतों की पूर्ति इन्ही वृक्षों से होती है।

इसी तरह अन्तरिक्ष में सभी उपग्रह ग्रहो के चारो ओर चक्कर लगाते हैं। ग्रह सूर्य के चारो ओर। सूर्य अपने साथ अपने सम्पूर्ण सौर-मण्डल के चक्कर लगाता है एक आकाश गगा में। आकाश गगा जैसी भी अनेक आकाश गगाए हें। अब इनमें नये ग्रह भी बनते रहते हैं, पुराने ग्रह टूटते-बिखरते भी रहते हैं। एक दूसरे ग्रहों में उल्काएं व तारे मिमटते भी रहते है।

सभी कुछ गतिमान है परिवर्तनशील है इसलिये हम मानवों को भी इस धरती पर अनेक परिवर्तन लाने है। मानव जाति के लिये, सृष्टि में सदैव आनद उपलब्ध रहा है। लेकिन यहा हमने आनद की सभी सम्भावनाओ को नष्ट करने का प्रयास किया है। फिर भी आनंद समाप्त नहीं हुआ। यही विषम

परिस्थितियों में भी मानव आनंद ले सकता है प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वाभाविक रुचियों के अनुसार आनंद खोज सकता है।

आनंद का उपभोग हमें त्याग के साथ करना चाहिये। जहां सुख है वहां दुःख भी है। उपभोग सदैव वस्तुओं का होता है वस्तुएं सुख की जगह दुःख ही देती हैं। जिसे भी हम वस्तु कहते हैं उस पर हम अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। जमीन, मकान, धन व धर्म जब मेरे-तेरे की भावना से ग्रसित हो जाते हैं, उस समय हम बहुत-सी दीवारें खींचते चले जाते हैं जबकि बड़ी जल्दी शरीर से आत्मा रूपी पंछी भी उड़ जाता है।

सर्वत्र जो आनन्द है उसके सब बराबर के हकदार हैं सभी धर्म उसी आनन्द की प्राप्ति के लिये हैं। सुन्दर आकाश, तारों की टिमटिमाहट, सूर्य के प्रकाश व चन्द्रमा की शीतल छटा के उपभोग के लिये बराबर के हिस्सेदार हैं सभी।

मानव मन्दिर जाते हैं व अपनी रुचि की मिठाइयां मूर्ति के भोग लगाने के लिये साथ ले जाते हैं। जैसे ही मूर्ति के भोग लगता है वैसे ही सर्वत्र जो व्याप्त है उसके प्रति उपभोग मे आने वाली वस्तु का समपर्ण हो जाता है। अब वह प्रसाद सभी में बराबर बांट दिया जाता है, यहां अमीर व गरीब छोटे व बड़े का भेद मिट जाता है। भिखारी से लेकर अरबपति तक सब उस प्रसाद के बराबर के भागीदार हैं कोई धर्म का बन्धन नही। भोग लगाने का तात्पर्य ही उस ईश्वर को मानना है जो सब में विद्यमान है।

प्रसाद बाटने से भगवान नही मिल जाता, समानता की बात मिल जाती है। कुछ भेद खो जाते हैं। इस तरह त्याग के साथ भोग करने से परम् आनंद का मार्ग भी प्रशस्त होता है। फिर हमारा आत्मिक सुख खोता नहीं है एक आनंद भी बना रहता है। उसके खोने की सम्भावना भी लुप्त हो जाती है।

कर्मवाद के सिद्धांत को हम माने या न माने निष्काम कर्म की बात हमे माननी ही पड़ेगी। कर्म के साथ जब हम फल को जोड़ देते हैं तब एक भापने में हम अपनी एकाग्रता को खो देते हैं फिर हम कर्म भी नहीं कर पाते। इसलिये कहा यह जाता है कि हमें ईश्वर भक्ति भी निष्काम भाव से करनी

चाहिये । मन्दिर, मस्जिद, गिरजे व गुरुद्वारे में यदि हम निस्वार्थ होकर जायें, किसी सांसारिक कामना को त्याग कर जायें तो इस धरती की बात ही कुछ और हो । सारे भेद स्वतः ही मिट जायें ।

धार्मिक स्थानों पर तलाश भी स्वयं को जानने की होनी चाहिये, भीख मांगने की नहीं । ऐसा होगा तो हमारे निष्काम कर्म,निष्काम होते हुए भी सृष्टि के हित में होंगे ।

यदि फल की इच्छा ही न रखें तो कर्म ही क्यों करें ? इस विचार को हमें जरा बदलना होगा । परम आनंद की प्राप्ति के लिये इच्छाओं का त्याग आवश्यक है । जीवन के इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही मन्दिर, मस्जिद व गुरुद्वारों की स्थापना हुई है । सर्वत्र वही आनंद व्याप्त है, हमारे इस संसार में ।

मार्ग हैं अनेक, मंजिल है एक

मनुष्य की चेतना पांच भागों मे विभाजित है। इनमे से तीन अव-स्थाओं को हम भली भांति जानते हैं। वह हैं, जागरण, स्वप्न व गहरी निद्रा। इसके बाद की मानव की चौथी अवस्था साक्षी भाव की है। जब मानव गहरी नींद से सुबह उठता है तब भी यह महसूस करता है कि रात बड़ी गहरी नींद आयी, ऐसी जिसमें स्वप्न भी नहीं थे। हमारे भीतर कोई ऐसा साक्षी बैठा है जो यह महसूस करता है। यह चौथा भी अन्तिम नहीं है क्योंकि जब तक यह साक्षी भाव रहता है, तब तक हमारा अस्तित्व बना रहता है। तब भी हम कहीं ब्रह्माण्ड से अलग होते हैं। जब यह साक्षी भाव भी मिट जाता है, तब परम आनंद की स्थिति आती है।

'जब कोई अस्तित्व की गहरायी में जाता है तब वहां धर्म ग्रन्थ नहीं होते। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर कुछ भी नहीं होते, यहां तक की विचार भी नहीं होते ऐसी परम् आनंद की अवस्था में। किसी भी माध्यम से इस अवस्था तक पहुंचा हुआ कोई सन्त फिर यदि हमारे बीच कहीं रहता भी है तो वह तेरे व मेरे के फेर से मुक्त रहता है।

मेरे

भीतर कौन है,

जो

इतना अच्छा-सा लगता है मुझे।

जो,

मुझ से,

इतनी गहरी बातें करता है।

– पुनर्जागरण

इतना
आनंदित कर देता है मुझे।
कि
भूल जाता हूं मैं
दीन दुनिया को,
धर्मों को,
मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों को।
मुझे तो सिर्फ
यह याद रहता है कि
मेरे भीतर भी
एक परम आनंद है।
मुझे
इस भीतर के परम आनंद को
सदैव बनाये रखना है।

जिस तरह हम एक घर में रहते हैं लेकिन घर की दीवारें यह नहीं जानती की यहां कुछ लोग सदैव रहने वाले हैं। इस धरती पर अरबों मानव रहते हैं सब की अपनी-अपनी दुनिया है। अपने विचार हैं। अपनी कल्पनाएं हैं। धरती को इन सब का पता नहीं। ठीक उसी तरह हम मानवों के भीतर भी एक परमात्मा है लेकिन हमारे शरीर को उस परमात्मा का पता नहीं।

प्रत्येक धर्म का मूल उद्देश्य उस परमात्मा को जानना ही है लेकिन जितने भी लोग धर्म के नाम पर आपस में लड़ने-झगड़ने वाले हैं उसका कारण भी इतना ही है कि ऐसे लोगों का धर्म से कोई सरोकार नहीं है। वे सभी चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले लोग है अज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंचे लोग हैं। अहंकार में इस कदर डूबे हैं ये लोग, कि अब इनका अपने प्रति भी समर्पण मुश्किल है। यही कारण है कि इनके अज्ञान को तोड़ना मुश्किल है।

उस परम आनंद की स्थिति तक पहुंचने के लिये समर्पण बड़ा जरूरी है। उसके लिये सर्वप्रथम संसार को, फिर अपने धर्म ग्रन्थों को, फिर अपनी देह को भी भूलने का अभ्यास करना होता है। चिन्तन करना है तो अपने मूल स्वरूप का। ऐसा स्वरूप जो जन्म से पहले था। जो मृत्यु के बाद रहेगा।

धर्म के इस मूल तत्व तक पहुंचने के लिये सब प्रकार के अहंकार को छोड़ना होगा। समर्पण को सहजता से स्वीकार करना होगा। अपने आप को शान्त व निर्मल बनाना होगा। उसके लिये जरूरी है कि हम सर्वत्र उस परम आनंद को देखें अपने धर्म में भी व दूसरों के धर्म में भी। यदि हम में ऐसी दृष्टि पैदा हो जाती है फिर साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना स्वतः ही समाप्त होने लगेगी। राग, घृणा व द्वेष को बचाये रखकर हम प्रज्ञावान नहीं हो सकते।

एक तरफ हम परम आनंद की बात करते हैं दूसरी तरफ हम इतनी घृणा से भरे लोग हैं कि एक दूसरों की हत्या करके कहीं कुछ हासिल करना चाहते हैं। एक दूसरे सम्प्रदाय का नामो-निशान मिटा कर किसी सन्तोष तक पहुंचना चाहते हैं। यह भूल कर कि जिस क्षण हम किसी की हत्या करते हैं उस क्षण हमारी भी मृत्यु हो जाती है। फिर हम एक जन्म पीछे खिसक जाते हैं। हमें कहीं अपराध बोध जकड़ लेता है। ऐसी अवस्था में परम आनंद हमसे उतना ही दूर होता है जितना कि पृथ्वी से तारे हैं। धर्म के नाम पर की जाने वाली हत्या के साथ ही हम स्वयं अपनी प्रगति के मार्ग में बाधक भी बनते हैं।

आत्मा की अनन्त गहराइयों में डुबकी लगाने पर ही निराकार ब्रह्म के दर्शन होते हैं। फिर सारी भ्रान्तियां दूर हो जाती हैं, यहां न राम की मूर्ति बचती है, न क्रास पर लटके जीसस की सूरत, न ही पैगम्बर का नाम। फिर पता चलता है ये सब तो उस तक पहुंचने में सहायक थे। ये सब तो ऐसे मित्र थे जिन्होंने मिलकर हमारी नाव को भव सागर के पार लगाने का प्रयास किया। जो परम आनंद है वह सर्वत्र है उसमें भला भेद कैसे हो सकता है।

धर्म आज हमारे मन से जुड़ा है। मन ने बहिर्मुखी होने के परिणाम स्वरूप संसार की बहुत कुछ बुरी बातें जन्म-जन्मान्तरों से अन्तर्मन में बिठा ली

हैं। अब हम धर्म के नाम पर जो कुछ भी विचार पढ़ते-सुनते हैं उन सब को अपने भीतर कहीं विठाते चलते हैं। उन सब विचारों को मन अपने अनुरूप ढालता चला जाता है। फिर वही विचार शरीर की मांस-मज्जा व हड्डी का एक हिस्सा बन जाते हैं और अलग-अलग रूपों में विद्रोह कर देते हैं।

इसीलिये धर्म के मूल तक पहुंचने के लिये सब कुछ भूलना बड़ा आवश्यक है। उसका एक ही उपाय है कि हम भीतर की यात्रा करें। भीतर का आनंद अनुपम आनंद है। संसार में व्याप्त सम्प्रदाय सीढ़ी का काम करते हैं छत पर आने के बाद सीढ़ी की आवश्यकता नहीं रहती। किसी ने सच ही कहा है कि "दुनिया के सारे धर्म नदी के किनारे पर बने घाटों के समान हैं अब चाहे किसी भी घाट से नदी मे छलांग लगाई जाये फिर भी नदी तो एक ही है। छलांग लगाने के बाद घाट का कोई महत्व नहीं, महत्व तो नदी का है।"

पर न जाने क्यों यह साधारण-सी बात हमारी समझ से बाहर ही कहीं रह जाती है, इस बात को हम अपने भीतर प्रवेश करने ही नहीं देते। यही कारण है कि हजारों तरह की वृत्तियों को भी हम अपने सम्प्रदायों से जोड़कर चलते है। वृत्तियों के साथ ही जुड़ा होता है हमारा अहंकार। अहंकार अपनी सीमाएं बनाता जाता है, अपनी, अपने परिवार की, अपनी जाति की, अपनी उपजाति की व अपने धर्म की। अहंकार की हजारों मनोदशाए हैं। ऐसे अहंकारियों के फिर ऐसे समुदाय बन जाते हैं जो एक दूसरे की सिर्फ खामियां ढूंढने का काम करते हैं। जबकि सभी सम्प्रदायों की अच्छाइयां भी खोजी जा सकती हैं। उनका सम्पूर्ण मानव जाति लाभ भी ले सकती है। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब हम यह मानें कि संसार के सारे धर्म हमें एक ही रास्ते पर चलने के लिये प्रेरित कर रहे हैं, वह है हमारे आत्मोत्थान का रास्ता। यही हमे सब भ्रान्तियों से मुक्त करता है।

कर्म परायणता

प्राचीन काल मे मिश्र में राजाओं व रानियों के मृत शरीरों को एक विशेष प्रकार का लेप लगाकर रखे जाने की पृथा थी। ऐसा ही एक मृत शरीर पाँच हजार वर्ष पुराना था, उसके हाथ में एक बीज था। इतिहासकारों की पैनी दृष्टि उस बीज पर पड़ी। वह बीज उठा लिया गया जो पांच हजार वर्षों से यूंहीं पड़ा था। उसे जमीन में बोया गया। पानी से सींचा गया। इतिहासकारों के आश्चर्य की सीमा न रही यह देख कर कि वह बीज अंकुरित भी हो गया। पाच हजार वर्षों बाद भी उस बीज मे अंकुरित होने की सम्भावनाएं व्याप्त थी।

अगर हम इस बीज मात्र के रहस्य को जान जायें तो सारी सृष्टि के रहस्य को जान सकते हैं। ठीक इस बीज जैसा ही सम्बन्ध आत्मा व शरीर का है। अनादि काल से प्रतिदिन हम जीवन–मृत्यु का खेल खेलते आ रहे हे। मगर अपने बीज को अंकुरित करने का हम जरा भी प्रयास नही करते। अंकुर से पौधा बनने व उस पौधे को वटवृक्ष मे परिवर्तित करने का तो सवाल ही नही उठता है।

आज भी विकास की पूर्ण सम्भावनाएं आत्मा मे हैं। हम ठीक उसी प्रकार इनको देख नही पाते, जैसे बीज मे वृक्ष दिखाई नहीं देता है। जब बीज पाँच हजार वर्षों से बोया ही नही गया हो तो इतिहासकारों को भी उसके अंकुरित होने की सम्भावना नहीं रहती। ठीक उसी प्रकार हमे प्राणीमात्र के विकास की सम्भावनाओं का ख्याल ही नही रहता। साथ ही हम अपनी आत्मोन्नति के रास्ते पर भी विश्वास नही करते कि इतनी असीमित शक्तियां हमारे में विद्यमान हैं।

हम बीज के समान मिट्टी मे मिलने की तैयारी ही नही कर पाते। जबकि अंकुरित होने के लिये तो बीज को मर मिटना पड़ता है। तभी जाकर पौधा

लगता है। सच, हमारी कभी मरने की तैयारी नहीं होती। हम कहीं स्वयं को बीज रूप में बचाकर रखना चाहते हैं। जबकि अपनी वासनाओं को बचाकर रखने से ही हमारी अंकुरित होने की सम्भावनाएं स्वयं समाप्त हो जाती है।

हम अपने भीतर न देखकर बाहर देखना शुरू करते हैं, और बाहरी चीजों से ही जुड़ते चले जाते हैं। हम अपने को इतना अधिक बचाकर रखते हैं कि खुद को बिल्कुल भूल जाते हैं। फिर हम परिवार, जाति व समाज के बन्धनों मे बन्ध कर रह जाते हैं। अन्तिम बन्धन मान लेते हैं हम अपने धर्म को। जबकि धर्म एक शुरूआत है मुक्त होने की।

इन सब से भी हम जुड़ते नाम मात्र से ही हैं करते हम सदैव अपने मन की हैं। हमारा उद्देश्य भी सासारिक सुखों मे वृद्धि करना ही रहता है हमारा मन संसार के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण बना कर चलता है कि अपने स्वार्थ सदैव बचे रहें। जबकि मन का कम्युनिकेशन जितना बाहरी जगत से है उतना ही भीतरी जगत से भी है। इसका कारण बाहर भीतर की समानता है। एक ही तत्व है दोनों जगह, पर हम न तो भीतर कभी गहरी छलांग लगाते हैं न बाहर कभी। हम अपने स्वार्थों के अनुरूप भीतर-बाहर कही भी रुक जाते हैं। इसी लिये जहां हम भी रुकते है वहीं हमारा दायरा हो जाता है जो नही रुकते वे परम आनंद को पा लेते हैं।

इसे दूसरी तरह से देखें जैसे गणित की शुरूआत शून्य से होती है। अब हम संख्याओं को कितना ही बढ़ाते जायें एक स्थिति ऐसी आयेगी जब संख्या बिखर जायेगी। फिर जो कुछ बचेगा वह भी शून्य होगा। वापस इसी तरह का प्रयास करने के लिये भी हमे शून्य से ही फिर शुरू करना पड़ेगा।

हम लोग चाह कर भी जिस तरह परम तत्व की बात से पुस्तकों को प्रकाशित नही कर सकते, वरन् उसके सन्दर्भ में कुछ पढ़ने मात्र से पुस्तकें स्वयं प्रकाशित हो जाती हैं। यह आनंद भी पुस्तकों का नहीं हमारे भीतर का है। पुस्तक से अन्तर्मन तक जोड़ने का काम मन करता है। इस अन्तर्मन से ही कहीं गहरे में जुड़ी होती है हमारी आत्मा...

आत्मा का कहीं कोई विकास नहीं होता, लेकिन उसे तत्व से जान लेना ही विकास की पूर्ण सम्भावना है। सभी धर्मों ने विभिन्न रूपों में इसी तत्व की बात कही गयी है।

इस संसार में जितने भी झगड़े हैं, उनका कारण भी इतना ही है कि हम कहीं रुक गये हैं यात्रा करते-करते। यद्यपि रुकना सम्भव नहीं है। इसीलिये हम अधूरे रह गये।

सब कुछ इस जगत में गतिमान है। जिस नाम पर भी हम रुके हैं वहीं हमने झगड़े खड़े कर लिये। चलते रहने का नाम ही जीवन-पथ की यात्रा है। एक सद्भावी संसार भी चलते रहकर ही बन सकता है। आज संसार की स्थिति 'सद्भावना' के विपरीत है। इसका कारण भी इतना ही है कि जो स्वयं अपने में नहीं बन्ध सकता वह सारी पृथ्वी को भी किसी रूप में नहीं बान्ध सकता। मानव का मन इच्छाओं से बन्धा है। इच्छाएं शरीर से बन्धी हैं। जबकि आत्मा शरीर में रहकर भी शरीर से मुक्त है।

शरीर एक पड़ाव है, आत्मा रूपी यात्रा का। धर्म सीढ़ियां हैं, अपने आप को पहचानने की। इस यात्रा के दौरान किये जाने वाले कर्मों से ही सम्भावना है, भविष्य में पृथ्वी के स्वर्ग या नरक बनने की।

बीसवीं शताब्दी के इन अन्तिम वर्षों में यदि हम जरा पीछे मुड़कर देखें, तब यह पायेंगे कि अभी दो महायुद्धों की चपेट में आया हमारा विश्व सम्भल भी नहीं पाया है कि फिर से तीसरे विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा है।

अब तक हुए इन दो महायुद्धों में दस करोड़ लोग मारे गये हैं व बीस करोड़ लोगों को बहुत परेशानी झेलनी पड़ी है। प्राचीन काल से लेकर अब तक जो ज्ञात इतिहास है हमारे पास वह गवाही दे रहा है पन्द्रह हजार युद्धों के लड़े जाने की। वास्तविक युद्धों की संख्या इनसे भी कहीं अधिक है। इन सब युद्धों में मिलाकर इतने मानव मारे गये हैं, जितनी इस दुनिया की जनसंख्या है। इनमें से अधिकतर युद्ध धर्म के नाम पर लड़े गये हैं। जिन्हें हमने क्रूसेड, जेहाद या धर्मयुद्ध का नाम दिया है।

हमारे देश में भी कुछ समुदायों के लोग आपस में धर्म के नाम पर मर मिटने को तैयार हैं। इन आजादी के चन्द वर्षो मे इस देश मे इतनी गोलियाँ चली है, इतने दंगे-फसाद हुए हैं, जितने गुलाम भारत के दो सौ वर्षों के इतिहास में भी नही हुए थे।

आज संसार मे इतना गोला-बारूद एकत्र है कि इस धरती को तीस बार तबाह किया जा सकता है। अब चाहे तीसरा विश्व युद्ध न भी हो पर विनाश की सम्भावनाए फिर भी बढ़ गयी हैं। एक स्थिति ऐसी आने वाली है, जब स्वतः ही इस बारूद मे विस्फोट हो सकता है। विज्ञान के सम्मुख यह बहुत बड़ी चुनौती है कि किसी तरह इस मानव संहार को रोका जाये। इन सब कार्यों को देखकर लगता है एक जागे हुए इन्सान जैसा कोई भी कार्य नही है हमारा।

सब, यात्रा खत्म होने पर अपने आप चले जायेंगे, कोई यहां सदैव रहेगा नही। फिर क्यो व किसको मारने की तैयारियों मे लगे हैं, हम लोग। हमारे द्वारा किये जाने वाले इन प्रयासों को देखकर नहीं लगता कि हम धरती पर कभी स्वर्ग उतारना भी चाहते हैं। लगता नही कि कभी हम अपने इन गलत सपनो को तोड़ कर वास्तविक संसार मे जागने की कोशिश करेंगे। लम्बे समय से चली आ रही एक अन्धी दौड़ के सहभागी हैं हम सब।

इन सब बातों को देखकर लगता है कि हमारा मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा जाना सब व्यर्थ है। ऐसा लगता है कि आज तक तो हम अपने इन धार्मिक स्थलों पर निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिये ही जाते रहे हैं। घर-परिवार व वासनाओं की इच्छा लिये ही गये हैं। ईश्वर से हमने मांगा भी तो क्या मांगा, इस ससार के लिये? उसे जाना भी तो क्या जाना, यदि हम अपने भीतर बैठे प्रभु को ही आज तक न जान पाये! जो शरीर के बन्धनों से भी मुक्त है।

बुद्ध से एक बार आनन्द ने पूछा कि क्या आप मृत्यु उपरान्त मोक्ष की कामना करते हैं। बुद्ध का जवाब था, तब तक नही जब तक इस संसार के अन्तिम आदमी तक को मैं मुक्त घोषित न करवा दूं।

आज हम सभी संकीर्ण विचार धारा के मानवों को बुद्ध की बात मान अपनी संकीर्णताओं का त्याग कर अपने आप को मुक्त घोषित कर देना चाहिये । तभी 'सद्भावी संसार' की कल्पना साकार रूप ले पायेगी ।

इसी तरह एक समय रविन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने आप को मुक्त घोषित करते हुए लिखा था ।

रात्रि के स्वप्न से छुट्टी मिली, निद्रा स्वप्न भंग हुआ !
सब बंधन टूट गये !
अब प्राण ओट मे नहीं रहे, मैं बाहर जगत में आ गया
हृदय कमल की सारी पंखुडियां फूट पड़ीं !
मेरा द्वार तोड़ कर जब तू स्वयं सामने आ खड़ा हुआ,
तब आंखों के नीर
में बहता हुआ हृदय
तेरे चरणों में लुटा दिया
नभ से प्रभात के प्रकाश ने मेरी ओर हाथ फैलाया—
बन्दीगृह से टूटे हुए दरवाजों से जय जयकार का उच्चार उमड़ उठा !



इस्लाम के पैगम्बर

मुहम्मद का शाब्दिक अर्थ होता है जिसकी सबसे ज्यादा प्रशंसा की जाये। कोई ऐसा प्रज्ञा पुरुष ही मानवों को ईश्वर का संदेश दे सकता है। मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई. मे अरब की मरुभूमि के एक नगर मक्का में हुआ था।

मुहम्मद साहब के जन्म के समय अरब के लोग घुम्मक्कड़ जीवन व्यतीत करते थे। लोग कबीलों मे रहा करते थे। कबीले आपस एक में दूसरे से संघर्ष करते रहते थे। उनका यह संघर्ष पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था। ऐसे बर्बर व लड़ाकू समाज को दीक्षित करना कोई आसान काम नही था।

पैगम्बर साहब ने सर्वप्रथम इन्ही लोगों को इस्लाम की शिक्षा देना प्रारंभ किया। यहां के कबीलों ने पैगम्बर का डटकर विरोध किया। इस विरोध के परिणाम स्वरूप विवश होकर इन्हें मक्का से मदीना जाना पड़ा। मदीना मे पैगम्बर को मानने वालों की संख्या बढ़ती गयी। यहीं आपका स्वर्गवास हुआ।

इस्लाम की शिक्षाओं को हम चार भागों मे विभाजित कर सकते हैं।

अकिदा अथवा विश्वास।

इबादात अर्थात विश्वासो के अनुसार कुरान मे बताई गयी पूजा पद्धति का अनुसरण करना।

अख्लातियत या नैतिकता।

मामलात से तात्पर्य है पारस्परिक सम्बन्धों का।

अकीदा अथवा विश्वास के अन्तर्गत एक मुसलमान को सच्चे हृदय से कुछ बातों पर विश्वास करना पड़ता है।

अल्लाह या ईश्वर एक है व मुहम्मद साहब उसके भेजे हुए दूत हैं। मरने के बाद प्रत्येक को जैसा कुछ उसने किया है उसी के अनुसार फल मिलेगा।

संसार का निर्माता एक ही है—अल्लाह या ईश्वर उसके सिवा कोई दूसरा नहीं ।

समाज के मार्ग दर्शन के लिये हर क्षेत्र व हर युग में पैगम्बर आये हैं व उन्होंने ईश्वर या अल्लाह के संदेश को हम तक पहुंचाया है, मुसलमान उन सब पर विश्वास करता है ।

इबादत के अनुसार इन्हीं उपरोक्त विचारों की क्रियान्वति हेतु एक सच्चे मुसलमान को कुछ काम भी करने पड़ते हैं। वे इस प्रकार हैं ।

नमाज—यह दिन में पांच समय की जाने वाली प्रार्थना है । पांच समय रोज अल्लाह को याद करना आवश्यक है ।

वर्ष में एक बार रमजान के माह में रोजे रखने आवश्यक हैं ।

अपनी जमा पूंजी या जो कुछ हम कमाते हैं उसका चालीसवां हिस्सा जकात के रूप दान में देना आवश्यक है ।

जीवन में कम से कम एक बार हज करने मक्का जाना चाहिये ।

इस प्रकार पैगम्बर साहब की शिक्षाओं में विश्वास करते हुए उन्हें ईश्वर या अल्लाह का दूत समझना चाहिये । सच पूछें तो ये ही पाच बातें इस्लाम के स्तम्भ हैं । इन बातों को यदि कोई मुसलमान नहीं मानता है तो वह सच्चा मुसलमा कहलाने का हक नही रखता ।

अख्लातियात में नैतिक शिक्षाएं हैं । जैसे एक व्यक्ति को अपने माता- पिता सगे, सम्बन्धियों, अध्यापक, पड़ौसी व देश—वासियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये ।

पैगम्बर साहब की कथनी (हदीस) के अनुसार एक मुसलमान की प्रार्थना उस समय भी स्वीकार नहीं होगी यदि उस मुसलमान का पड़ौसी भूखा सो रहा है ।

एक मुसलमान सही मुसलमान तभी माना जायेगा जब उसका पड़ौसी उससे किसी प्रकार से भयभित न रहे । एक मुसलमान के लिये यह अनिवार्य है कि जिस चीज को वह खुद पसन्द नही करता उसको वह दूसरे के लिये भी नापसन्द करें । जिस प्रकार उसको अपनी जान माल व इज्जत प्रिय है उसी प्रकार वह दूसरों की भी जान, माल व इज्जत की रक्षा करे ।

रिश्वत खाना, झूठ बोलना, व्यभिचारी जीवन जीना, व्याज लेना, मदिरा पान करना इस्लाम में इन सबका निषेध है। पैगम्बर साहब ने अपने अनुयायियों को सदैव नैतिक आचरण से जीने की शिक्षा दी। उनका स्वयं का जीवन भी एक नैतिक व्यक्ति का उदाहरण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है।

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार एच. जी वैल्स ने अपनी पुस्तक 'आउट लाइन ऑफ दा वर्ल्ड हिस्ट्री' में पैगम्बर साहब की जीवनी पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'आपने अपने जीवन में अन्तिम हज के मौके पर जो सन्देश दिया वह पूरी इस्लामिक शिक्षा का सार था।' इस सन्देश में पैगम्बर साहब ने समस्त संसार को विश्व बन्धुता का सन्देश दिया था व फर्माया था कि सारा संसार एक आदम की औलाद है व आदम मिट्टी से बने हैं इसीलिये सब आपस में भाई-भाई है। किसी एक को किसी दूसरे से कहीं कोई प्राथमिकता नही है। सब समान हैं। अरबी, ईरानी व हब्सी में कहीं कोई अन्तर नही है। अन्तर है तो वह जन्म, जाति व क्षेत्र के कारण नही। वह इस पर निर्भर करता है कि कौन कितना पवित्र जीवन व्यतीत करता है। सभी को बराबर के अधिकार प्राप्त है नारी व पुरुष के अधिकारों मे कोई अन्तर नही है। दास व स्वामी का कहीं कोई भेद नहीं रखना चाहिये। हर मुसलमान का यह कर्त्तव्य होता है कि महिलाओं, विकलांगों, अनाथ व्यक्तियों व बुजुर्गों का ध्यान रखें। बीमार की सेवा करना एक पुनीत कर्त्तव्य है।

पैगम्बर साहब ने जो कुछ कहा वह करके दिखाया। इसी कारण वे नैतिक आचरण के प्रमुख शिक्षक माने जाते हैं। इसी तरह (मोसने आजम) मामलात में शादी, ब्याह, तलाक सम्बन्धी नियम आते है। 'कुरान' व 'हदीस' में स्पष्ट अंकित है कि इनसे मुसलमानों का जीवन 'रेगुलेट' होता है।

महाद्वीप एशिया को यह गौरव प्राप्त है कि उसने संसार को बहुत से धर्म दिये हैं। उनमे से इस्लाम भी एक है।

संसार के सभी भागों में इस्लाम को मानने वाले अनुयायी मिल जायेंगे। इस विश्व व्यापी इस्लामी आकर्षण का मुख्य कारण यह है कि इस्लाम ने उस समय मानवता, विश्व बंधुता का सन्देश दिया जब संसार के लोग आदि-

पाति व ऊंच-नीच जैसे भेद भाव को मानते थे व अरब के लोग कबायली युद्धों मे व्यस्त रहते थे। अरब के लोग इस बात के इच्छुक थे कि किसी तरह बेवजह होने वाले इन संघर्षों का अन्त हो। इस्लाम के उदय से अरब में इन कबायली युद्धो का अन्त हुआ व मानवता का जन्म हुआ।

इस्लाम ने सादे जीवन व उच्च विचारों पर जोर दिया। संसार के दुःखो को को दूर करने के लिये जकात व दानशीलता की शिक्षा दी।

भविष्य के लिये 'क़ुरान' व 'हदीस' के रूप में मुसलमानों को एक सविधान भी दिया। जो मुसलमानों का हमेशा मार्ग दर्शन करता रहा है व भविष्य में भी करता रहेगा। पैगम्बर के पैगाम मे अधविश्वासों को तिलांजली दी गयी व एक ही अल्लाह या ईश्वर के विश्वास पर जोर दिया गया।

शुद्धता व पवित्रता पर भी इस्लाम ने काफी जोर दिया है क्योंकि शरीर पवित्र हुए बिना नमाज अदा नही की जा सकती। शुद्ध तरीके से धन कमाने व शुद्ध तरीके का ही काम करने की बात इस्लाम मे कही गयी है। जिससे की अनुचित तरीकों से कमाया हुआ धन मुसलमानों को भ्रष्ट न कर सके। हराम के तरीके से कमाये गये भोजन को करने के बाद दी गयी नमाज भी स्वीकार नही होती। यही कारण है कि समस्त बुराइयों की जननी मदिरा का निषेध किया गया है। इन सब नियमों का पालन करके प्रत्येक मुसलमान कई बुराईयों से अछूता रह सकता है। इस्लाम की सबसे बडी देन आपसी भाईचारे की बात है। इस एक सिद्धान्त को भी माना जाये तो आज ससार मे शान्ति स्थापित हो सकती है बड़े दुख को बात है कि आज दुनिया ने इसी भाईचारे के भाव की बात को भुला दिया है। जब तक इस सिद्धान्त का पुनः प्रतिपालन नही होगा तब तक विश्व मे स्थायी शान्ति की बात करना भी कठिन हो जायेगा।

बहुत से लोग 'जेहाद' का अर्थ यह मानते हैं कि 'इस्लाम व तलवार।' वे युद्ध जो इस्लाम के प्रसार व प्रचार के लिये लड़े जाते हो। रजाओं ने इस शब्द का गलत इस्तेमाल अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु किया है। 'जेहाद' का शाब्दिक अर्थ है 'संघर्ष'। जब मे इन्सान पैदा होता है तभी से वह संघर्ष करता रहता है। सबसे पहला संघर्ष उसका अपने आप से होता है।

वह यह प्रण लेता है कि उसकी इच्छाएं जो उसे बुरे कामों के लिये प्रेरित करती हैं उन बुरी इच्छाओं से संघर्ष करके वह नेकी की राह पर चलेगा। जब वह स्वयं से संघर्ष कर चुका होगा तब वह अपने पड़ौस में व राज्य में जहां भी बुराइयां देखेगा वह नेक इन्सान उन बुराइयों को भी दूर करने का प्रयास करेगा। तीसरा जैहाद केवल रक्षात्मक जैहाद है जब कोई उस पर आक्रमण करे उस आक्रमण का रोकने के जितने भी उपाय हों वह अपनी रक्षा के लिये उस आक्रमण का प्रति उत्तर दे सकेगा। इसे ही 'इस्लामिक विधि में अल्लाह की राह पर जैहाद करना कहते हैं। जिसका मुख्य उद्देश्य रक्षात्मक है यह रक्षात्मक जैहाद तभी किया जा सकता है जब किसी दूसरे की ओर से आक्रमण हो। आज के सन्दर्भ मे हमारे कितने मुसलमान भाई ऐसे हैं जो पैगम्बर की बातो को पूरी तरह से मानते हैं जो इस बात में विश्वास करते हैं कि हमारा पड़ौसी भी भूखा न सोये। कितने है ऐसे जो अपनी व पड़ौसी की बुराइयों को दूर करने का प्रयास करते हैं। एक नेक इन्सान व एक सच्चा मुसलमान बनने की कसम खाते हैं। यदि वे ऐसा नही करते तो उनको अल्लाह की राह में जैहाद करने का भी हक नहीं है। हम सभी फिर से अपने जीवन पर नजर डालें अपनी कमजोरियों को अपने आप से दूर करने व एक नेक इन्सान बनने के लिये जैहाद की शुरूआत करें।

❀❀

प्रेम के पुजारी जीसस

जीसस का जन्म यहूदियों के राजा हेरोद के राज्य काल में सम्भवतः छः ई. पू. हुआ था। उस काल में फिलिस्तीन रोमन साम्राज्य का अंग था। उनकी माँ का नाम मरियम था। जीसस का जन्म जिस नगर में हुआ उस नगर का नाम बेथलेहम था।

बाल्या अवस्था में जीसस का लालन-पालन व शिक्षा यहूदी धर्म के अनुरूप ही हुई थी। वे पूजा उपासना के लिये 'येरुसलम' भी जाया करते थे। यहूदी धर्म के प्रवर्तक मूसा द्वारा घोषित विधि-संग्रह भी बाईबल के प्रथम पांच भागों में संकलित है। जिसे 'मूसा संहिता' के नाम से जाना जाता है। ईसा ने स्वयं 'गिरी प्रवचन' के समय कहा था "यह न समझना कि मैं संहिता के लेखों को रद्द करने के लिये आया हूं, मैं उन्हें रद्द करने नहीं वरन् पूर्ण करने आया हूं।"

एक बात ध्यान देने की है कि जीसस ने यहूदियों के धर्म ग्रन्थों की नैतिक शिक्षा को एक अध्याय माना इसके साथ ही एक अध्याय स्वयं ने भी युग परिवेष को मद्दे नजर रखते हुए लिख दिया है। ये ग्रन्थ भी मानव जाति के लिये बहुत उपयोगी हो सकते हैं। जीसस अक्सर लोगों से कहा करते थे 'मूसा–संहिता के नियमों का सभी को पालन करना चाहिये। मूसा–संहिता में नैतिक आचरण की शिक्षाएं हैं जैसे — किसी की हत्या मत करो, व्यभिचार मत करो, अपने माता-पिता का सम्मान करो, अपने पड़ोसी को उतना ही प्यार करो जितना तुम अपने आप से करते हो।

जीसस की धार्मिक शिक्षा की विशेषताओं में से एक प्रमुख बात यह रही कि उन्होंने अपनी शिक्षाओं को कर्मकाण्ड के नियमों में जकड़ा नहीं, बल्कि उन्हें प्राणी मात्र के मनोभावों के साथ जोड़ दिया।

जीसस के अनुसार धर्म का सार दो बातों में है। मानव व परमात्मा का सम्बन्ध पिता व पुत्र का सम्बन्ध है। दूसरी बात सब एक ही पिता की संतान हैं इसलिये कोई आपस मे घृणा द्वेष न रखे वरन् सभी प्रेम व पारस्परिक सौहार्द से मिल-जुलकर रहें। जो इस तरह प्रेम से नही रह सकते वे ईश्वर के भक्त होने का दावा करना छोड़ दें। जो कि आपस मे प्रेम से भी नहीं रह सकता वह ईश्वर को कैसे प्राप्त कर सकता है।

बाईबल में लिखा मिलता है कि 'अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो, उनकी भलाई करो और वापस पाने की आशा न रख कर उधार दो। तभी तुम सर्वोच्च प्रभु के पुत्र बन सकते हो। प्रभु कृतघ्नों और दुष्टों पर भी दया करता है। प्रत्येक को उसी पिता के समान दयालु बनना चाहिये।

जीसस ने जो कुछ कहा वह मानव मात्र की भलाई के लिये कहा। ऐसी महान् आत्मा का जैसा सम्मान होना चाहिये था वैसा ही सम्मान समकालीन जनता ने जीसस का किया बहुत जल्दी ही बहुत से लोग जीसस के अनुयायी बन गये।

जीसस ने इस संसार को सुन्दर स्वर्ग मे रूपान्तरित कर देने की अनूठी कल्पना की। इस कल्पना मात्र में जीसस के अलौकिक सौन्दर्य की झलक मिलती है। जीसस द्वारा घोषित स्वर्ग राज्य के दो पहलू थे। पहला प्राणी मात्र के जीवन को परम पिता से साक्षात्कार करवाने की बात करना। दूसरा उन्होने दीन, हीन व दु:खी व्यक्तियो मे नवीन आत्म विश्वास पैदा किया। उनका कहना था 'धन्य हैं वे लोग, जो गरीब दीन-हीन अवस्था मे हैं स्वर्ग राज्य के द्वार ऐसे लोगों के लिये सदैव खुले हैं।' यही कारण था कि वे जल्दी ही गरीबों के मसीहा बन गये।

बच्चो के प्रति जीसस की धारणा थी कि ये निष्कपट होते हैं उनका कहना था कि 'यदि तुम फिर से छोटे बालकों जैसे नही बन जाओगे तो स्वर्ग राज्य में प्रवेश नही कर पाओगे।'

ध्यान देने की बात यह है कि जीसस ने बालक बन जाने को नहीं कहा। वरन् बालक जैसा बन जाने की बात कही। बालक अबोध होता है उसे

अपने होने का भी पता नहीं होता । यद्यपि जीसस की आलोचना करने वाले लोगों ने जीसस के बारे में कहा कि वे बालकों का स्वर्ग बनाने जा रहे हैं। उनका कहना यह था कि बालक ही नहीं होना वरन् युवा होते-होते, बड़े होने के साथ-साथ मानव जिन बालपन की मूलभूत अच्छाइयों को खोता चला जाता है, उन अच्छी बातों को हमें फिर से आत्मसात करना है ।

जहां यहूदी अपने आप में सीमित थे वहीं जीसस ने संसार भर के लिये अपने स्वर्ग के द्वार खोल दिये । यहूदियों को अपना प्रभुत्व खोता नजर आने लगा व जीसस के बढ़ते प्रभाव को देखकर उनकी हत्या कर दी गयी ।

जीसस से जब कभी कोई यह पूछता कि यहूदी धर्मशास्त्र की सबसे अच्छी बात कौन-सी है ? जीसस कहते, 'अपने प्रभु को, अपनी सारीबुद्धि, सारे हृदय से प्यार करना, यही सबसे बड़ी बात है। दूसरी अपने पड़ोसी को भी अपने समान प्यार करना है । जीसस प्रेम के पुजारी थे । उनके समान प्रेम का कोई दूसरा उपासक खोजना मुश्किल है ।

जीसस का कहना था 'आंख के बदले आंख और जान के बदले जान' यह सिद्धान्त पुराना हो गया, मैं तुमसे कहता हूं दुष्ट का सामना मत करो, यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा भी उसके सम्मुख कर दो । अपने पड़ोसी से जैसे प्रेम करते हो वैसा ही अपने दुश्मन से भी करो । वे कई बार उदाहरण देते हुए कहा करते थे कि सूर्य, भी धर्मी व अधर्मी सभी को प्रकाश की किरणें देता है, मेघ धरती पर सभी के लिये पानी बरसाते हैं । फिर तुम सूर्य के समान सब लोगों से बराबर प्रेम क्यों नहीं करते। जब तक हम सभी से प्रेम करना नहीं सीखते तब तक पूर्ण नहीं हो पायेंगे ।

काश ! हम जीसस की इस प्रेम की भाषा को समझ पाते । प्रेम के साथ पश्चाताप व क्षमा करने का भी ईसाई धर्म में अपना विशेष स्थान है । जीसस कहा करते थे कि यदि कोई अपनी गलती की माफी मांग लेता है तो उसे हमें क्षमा कर देना चाहिये । यदि कोई 70 बार भी गलती करता है व हर बार

क्षमा मांगता है तो हमें उसे हर बार क्षमा कर देना चाहिये। एक दूसरे की गल्तियों को क्षमा करने से ही आपसी प्रेम बढ सकता है।

जीसस ने जहां एक ओर दूसरों की गल्तियों को क्षमा करने की बात कही वहीं स्वयं की गल्तियो को स्वीकार करने की भी बात कही। विश्व भर को जीसस की देन यही है कि इन्सान अपनी गलती का स्वयं पाश्चात्ताप कर लें। जीसस का मानना था कि पाप को काटने का यही तरीका श्रेष्ठ है। जब इन्सान खुद अपनी गलती को 'रियलाइज' कर लेता है, तो वह उस पाप से मुक्त हो जाता है। जीसस में वे सभी गुण थे जो एक प्रज्ञा पुरुष में होते हैं।

उन्होंने दुनिया के गरीब, से गरीब हीन से हीन व्यक्ति के लिये, पापों के बोझ तले दबे अन्तिम व्यक्तियों के आत्म विश्वास को जगाया। अब पापी से पापी भी पश्चाताप कर फिर से अपने एक नये जीवन की शुरुआत कर सकता था। जीसस ने संसार भर के दुविधा युक्त मानवों के लिये स्वर्ग के द्वार खोल दिये।

उनका कहना था यदि कोई तुम्हारी हत्या कर देता है तो उसे कुछ भी हासिल नहीं होता, क्योंकि तुम को मार कर भी वह तुम्हारी आत्मा को नहीं मार सकता। संसार में खतरनाक वे लोग हैं जो तुम्हरी आत्मा को व शरीर दोनों को नरक मे जाने योग्य बनाते हैं। इसलिये इन्सान को पापों से अपने आप को मुक्त कर लेना चाहिये।

जीसस की सारी शिक्षाएं आज भी उतनी ही शाश्वत हैं जितनी दो हजार साल पहले थी। इन शिक्षाओं को आत्मसात कर हम पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, परोपकार की भावना के साथ रहते हुए एक ऐसे स्वर्ग की कल्पना को साकार कर सकते हैं जिसमे संसार की सारी शत्रुता, सारा वैमनस्य, दंगे-फसादो के धूमिल होने की पूरी सम्भावनाएं हैं। जरूरत है तो जीसस की मूल बातो को मानने की। यद्यपि जीसस को अपनी बात कहने का मौका सिर्फ तीन वर्ष का ही मिला, मगर आज दो हजार वर्ष बाद भी, उनकी अमर वाणी लाखों-करोडों मानवों के लिये प्रेरणा स्रोत है।

सम्मुख रखी जो कि बड़ी सीधी व सरल विचार धारा थी। बुद्ध वेद मूलक परम्पराओं से बड़े दुखी थे जो कि विकृत हो चुकी थीं। अत्याधिक कर्म–काण्डों व हिंसा के प्रयोगों के बीच सोमरस के नशे में चूर सार्वजनिक रूप से उस काल के स्वार्थी ब्राह्मण जो कुछ भी करते थे वह बुद्ध को धर्म–संगत कतई जान नहीं पड़ता था। बुद्ध के समय मे वैदिक रूढियों के साथ-साथ अंधविश्वासों तथा पाखण्डों का भी समाज में बोलबाला था। बुद्ध किसी भी धर्म ग्रन्थ पर अन्धा-विश्वास करने की अपेक्षा स्वयं को सुधारने की बात पर जोर दिया करते थे। उनका कहना था कि तर्क की कसौटी पर परखे बिना किसी बात को जबरदस्ती मान लेने मे कोई महत्व नहीं। उन्होंने स्वयं की चेतना जागृत करने की बात कही। उनके बताये रास्ते मे कामनाओं तथा वासनाओ के लिये स्थान न था। वे किसी भी प्रकार के दुखों को बढाने की अपेक्षा दुखों का निवारण करने पर बल देते थे। उनकी सरल शिक्षाओं मे एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि वे आजीविका भी सम्यक चाहते थे तथा ऐसे सम्यक आजीविका कमाने वाले लोगों से ही बौद्ध भिक्षु भिक्षा लिया करते थे।

बुद्ध दर्शन तथा ईश्वर के सम्बन्ध मे मौन रहा करते थे। इन सब बातों से हटकर उनका कहना था कि प्राणीमात्र को सच्चरित्र बनना चाहिये।

एक बार की बात है। पांच ब्राह्मण बुद्ध के पास वाद–विवाद करते हुए आये। उनकी लडाई अपने-अपने शास्त्रों को लेकर ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में थी तथा ईश्वर प्राप्ति के लिये वे पाचों अपना मार्ग भी अलग-अलग बता रहे थे। बुद्ध ने शांतिपूर्वक सबकी बातें सुनीं। फिर वे उन पांचों से पूछने लगे कि क्या किसी के शास्त्र मे यह लिखा है कि ईश्वर कभी झगड़ा करते थे या किसी को हानि पहुंचाते थे। या अशुद्ध रहते व बोलते थे। सभी ने कहा नहीं ईश्वर विकारों से दूर व कल्याणकारी है। यह सुन बुद्ध बोले फिर विवाद में पड़ने से क्या लाभ। सर्वप्रथम शुद्ध व सदाचारी बन कर कल्याणकारी भावों के साथ ही ईश्वर का ज्ञान हमें हो सकेगा। बुद्ध ने हमेशा कहा कि अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्नों से होगी अतः स्वयं दीपक बनो। बुद्ध शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है 'आकाश के समान अनन्त ज्ञान सम्पन्न।'

बुद्ध के सम्बन्ध में कहा यह जाता है कि ग्रामीण महिलाओं के गीत के बोल से उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई । वे गया में एक वृक्ष के नीचे बैठे घोर तपस्या में लीन थे व उनका प्रण था-अब तभी मेरी तपस्चर्या पूर्ण होगी जब मुझे ज्ञान मिल जायेगा । अचानक वे कुछ ग्रामीण महिलाओं के गीत के बोल सुन कर चौंक गये । वे गीत के बोल थे ।

वीणा के तारों को इतना ढीला भी मत छोड़ो कि उनमें से संगीत न निकले । उन्हें इतना कस भी मत दो कि वह टूट जायें ।

बड़ी तीव्रता से गीत के यह बोल बुद्ध के भीतर प्रवेश कर गये । एक ही क्षण में वे अब साधारण गौतम से बुद्ध हो गये । जिस स्थान पर यह गीत सुना गया वह स्थान बौद्ध गया बन गया । जिस वृक्ष के नीचे बैठकर यह गीत सुना गया वह वृक्ष भी बोद्धी वृक्ष के नाम से अमर हो गया ।

आदमी सीखना चाहे तो कहीं से भी सीख सकता है नहीं सीखना चाहे तो हजारों पुस्तकों का अध्ययन भी व्यर्थ है । यद्यपि बुद्ध ने विभिन्न प्रकार के तप व साधना के माध्यम से अपने आप को साधने की कोशिश की लेकिन बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद उन्होंने कठोर साधना पर बल नहीं दिया ।

धर्म की परिभाषा देते हुए वे कहा करते थे कि धर्म वही है कि हम किसी की हिंसा नहीं करें, झूठ नहीं बोलें, दुसरों के अवगुणों को देखने की अपेक्षा खुद के अवगुणों को दूर करने का प्रयत्न करें । राग, द्वेष, घृणा व वैमनस्य से दूर रहें । जाति-पांति के बन्धन को न मानें । अन्धविश्वासों में व अज्ञान में जीना छोड़ दें । उनका कहना था कि सच्चा धार्मिक वही है जो संसार के दुखी मानवों की सहायता करे ।

जैसे वे स्वयं सरल थे वैसा ही सरल था उनका बताया गया मार्ग-- उन दिनों वैदिक यज्ञों में पशु बलि दी जाने का प्रचलन था । बुद्ध को कभी समझ नहीं आया कि पशु बली से किस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है । उनका कहना था कि 'यदि किसी निरीह पशु के होम करने से ईश्वर प्रसन्न हो सकता है तो शायद मनुष्य होम करने से ईश्वर और अधिक प्रसन्न हो सकता है यदि किसी

को मारने से ही होम की आहुति पूर्ण होती है तो निरीह पशु को बचाकर मेरी आहुति दे दो।'

वे पूर्ण रूप से निष्काम थे। उनका हृदय विशाल था। वे कहा भी करते थे कि निष्काम कर्म से ही मानव पूर्णत्व तक पहुंच सकता है। बुद्ध का धर्म मानव मात्र के लिये कल्याणकारी सिद्ध हुआ। यही कारण था कि इसका विकास बड़ा तीव्र हुआ। अशोक के शासन काल में यह गंगा की तलाई का छोटा-सा धर्म विश्व का प्रसिद्ध व चर्चित धर्म बन गया। सम्पूर्ण विश्व में बौद्ध सिद्धान्तों की लहर-सी दौड़ गयी। तिब्बत, चीन, रूस, पोलैण्ड होता हुआ यह धर्म पश्चिमी जगत के अनेक देशों मे फैल गया। आज भी नेपाल, भूटान, श्रीलंका, बर्मा, थाईदेश, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, कोरिया व जापानआदि अनेक देशों में बौद्ध धर्म स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इतने प्रसिद्ध होने का कारण बौद्ध धर्म की शिक्षाएं एक आम आदमी की समझ मे आने वाली थी। उनकी बातें गरिमा युक्तप्रेम से भरी थीं। ऐसे प्रेम से जिसने जीव मात्र के लिये मुक्ति का मार्ग खोज निकालने के अतिरिक्त किसी अन्य बात की चिन्ता नहीं की। बुद्ध दुनिया के उन थोड़े से शिक्षकों मे सबसे अग्रणी है जिन्होंने सारी शिक्षा मनुष्य को स्वावलम्बी बनने की दी है।

एक बार कि बात है बुद्ध एक गांव में प्रवचन देने जा रहे थे कि क्या देखते हैं, रास्ते मे किसी व्यक्ति को एक तीर लग गया। बुद्ध ने दौड़कर उस व्यक्ति की सहायता करनी चाही, पर वह व्यक्ति लहूलुहान अवस्था में भी अपनी सहायता करवाने को तैयार नहीं था। वह बोला यह तीर मुझे किसने मारा, किसलिये मारा, मारने वाला कौन था, उससे ऐसा गलती से हुआ या उसने जान-बूझ कर मुझे मारने का प्रयत्न किया। बुद्ध ने कहा ये सारी बातें बाद मे भी हो सकती हैं अभी तुम्हारी जिन्दगी का सवाल है। जरा सेवा का मौका दें, तो मैं तीर निकाल कर थोड़ी मरहम पट्टी कर दूं। कहीं ऐसा न हो कि आप अपने प्रश्नों को ले दुखी ही होते रहें और आपके प्राण पखेरू उड़ जायें। सच हम अपने भीतर लगे दुखों के तीर को निकालने का जरा भी प्रयास नहीं करते छट्ठी शताब्दी

ईसवी में पूर्व मानव मात्र के दुखों को दूर करने का प्रयास किया था बुद्ध व महावीर स्वामी ने।

बुद्ध के समकालीन ही थे महात्मा महावीर। ये जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर थे। तीर्थंकर का शाब्दिक अर्थ होता है 'नदी के किनारे का घाट'। इनका जन्म वैशाली के कुण्ड ग्राम में हुआ था। बुद्ध के समान ही महावीर भी गांव–गांव, शहर-शहर, घूम घूम कर, दीन, दुखियारों का कष्ट निवारण करने लगे।

महावीर की शिक्षाओं का मूल उद्देश्य भी संसार के कल्याण की भावना ही था। ये भी बुद्ध के समान राजा के ही पुत्र थे व आत्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु महावीर ने भी राजसी ठाठ–बाठ का परित्याग कर दिया था। बहुत समय तक ज्ञान प्राप्ति हेतु इन्होने जंगलों, कन्दराओ व पहाड़ों की शरण ली। ज्ञानत्व को प्राप्त होने के बाद महावीर स्वामी फिर से इस ससार से अज्ञान को दूर करने के लिये समाज मे आ गये। महावीर स्वामी संसार में रहते हुए भी मुक्त अवस्था मे रहने लगे। उन्हे शरीर पर धारण किये जाने वाले कपड़े तक बोझ लगने लगे व इन्होंने दिगम्बर रहना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ मे लोगो ने अज्ञान वश महावीर स्वामी को इस अवस्था मे देख पागल समझा। उन्हे हजारों प्रकार के कष्ट जनता द्वारा दिये जाने लगे। कोई उन्हे पत्थर मारता तो कोई उन पर कीचड उछालता। पर धीरे-धीरे लोगो को समझ मे आने लगा कि यह साधारण-सा दिखाई देने वाला कोई असाधारण मानव है। फिर लोग उनका सम्मान करने लगे उनकी बातो को सुनने व समझने लगे। महावीर का एक ही उद्देश्य था जन कल्याण की भावना। दिन प्रतिदिन उनकी सेवा भावना उनके अनुयायियो की संख्या के साथ विस्तार पाती रही। मानव से लेकर सुक्ष्म जीवाणुओं को भी महावीर ने जीने का हक दिया।

जो कठिनाइयां सन्यास लेते हुए बुद्ध को आयी थी वैसी ही कठिनाइयो का सामना महावीर को भी करना पड़ा। उनका विवाह यशोदा नामक राजकुमारी के साथ कर दिया गया। उन्होंने सदैव अपनी पत्नी से असीम प्रेम

किया। ऐसा प्रेम की पत्नी को स्वयं महसूस होने लगा कि वर्धमान ने परमात्मा का पूर्ण प्रतिबिम्ब है। उन पर सिर्फ उस अकेली का अधिकार नहीं है वरन सम्पूर्ण जाति का उन पर समान अधिकार है। यशोदा की समझ मे यह बात धीरे-धीरे आने लगी। जिसके परिणाम स्वरूप यशोदा हर प्रकार के त्याग के लिये तैयार हो गयी। यहां वर्धमान से ज्यादा महत्वपूर्ण यशोदा का त्याग है। जिसने अपने पति की महान् भावनाओं की कद्र की। स्वयं यशोदा ने उनका रास्ता प्रशस्त किया। दूसरी महत्वपूर्ण बात यहां बुद्ध से ज्यादा महत्वपूर्ण महावीर की समझ है। महावीर ने अपनी पत्नि को अर्धरात्रि मे सोते हुए नही छोड़ा वरन् उनसे अनुमति लेकर घर त्यागा।

जहां बुद्ध भीड़ से अकेले होने को घर छोड़ कर गये, वहीं महावीर भीड़ में ही अकेले हो गये। यह बात सिर्फ एक तथ्य है। महत्वपूर्ण यह है कि दोनों के उद्देश्य अच्छे थे। व मानव मात्र के लिये उपयोगी थे।

जहां बुद्ध ने मध्यम मार्ग अपनाया वही महावीर ने अपने को अधिक कष्ट देने की कोशिश की। वे सदैव कष्टो के माध्यम से अपने को साधने का प्रयत्न करते रहे फिर ऐसी मुक्त अवस्था में पहुंच गये जहां कोई भी कष्ट, कष्ट नहीं रहा। दुख का कांटा हमेशा के लिये निकल गया। एक परतंत्रता समाप्त हुई और आनंद की शुरूआत हुई।

महावीर की अंतरदृष्टि बडी अदभुत थी उनका कहना था मनुष्य को अपने दुखों को दूर करने से पहले यह जान लेना बड़ा आवश्यक है कि मूल रूप से दुख का कारण क्या है, फिर यह जानने की जरूरत है कि दुख है क्या? हमारे यहां एक शब्द है सन्यास। यह सर्वोच्च शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'जिसने समस्त दुखों के मूल कारणों को दूर कर लिया है।' वही सन्यासी है।

महावीर के अनुसार सारे दुख का मूल कारण यह मानना है कि मैं शरीर हूं। जब इन्सान यह समझता है तब यह भी ख्याल करता कि मैं शरीर हूं तब तक मैं संसार मे हूं। जब तक हमारी समझ ऐसी है तब तक मुक्ति का द्वार बन्द है क्योंकि मोक्ष से तात्पर्य इतना ही है कि आदमी यह जान ले कि मैं शरीर

नही हूं। महावीर ने एक प्रयास किया है प्राणीमात्र की चेतना को शरीर से दूर करने का। महावीर की सारी तपस्चर्या भी इसी बात को जानने के लिये है कि चेतना और शरीर अलग-अलग हैं।

महावीर का कहना था कि जो आत्मा व शरीर मे फासला बना देता है उसके लिये मोक्ष असम्भव नहीं रहेगा। मोक्ष के बाद सारे रास्ते सरल व सहज हो जायेंगे कोई भी कठिनाई नही रहेगी।

धीरे-धीरे इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर हजारों लोग इनकी ओजपूर्ण वाणी सुनने आने लगे जहां भी ये जाते हजारों की तादाद में एकहुजूम इनके साथ चलता। वे इतने निर्भीक थे कि जहाँ भी इन्होंने लोगो को अज्ञान व अन्धविश्वासों मे डूबे देखा, पाखण्डों मे उलझे देखा, कर्मकाण्डों से बन्धे स्वार्थों को देखा वहीं उन्होने सभी आडम्बरों का खण्डन किया।

महावीर के विचार सरल, सहज व सादगी से भरे थे। ज्ञान व सच्चे रास्ते की प्यासी भीड महावीर की शिष्य बन गयी। इस प्रकार बुद्ध व महावीर के नवीन विचारों से सम्पूर्ण देश मे प्रकाश की किरणें फैल गयी। इनके अनुयायियों ने स्वछन्द व सादगी पूर्ण विचारों को अपने जीवन मे ढाल एक सुन्दर समाज की रचना की।

इसी तरह चीन में भी लाओत्से व कन्फ्युशियस के विचारो ने नवीन समाज की स्थापना की। उस काल मे चीन मे भी रूढ़ियों जादू-टोनों व अन्ध-विश्वासों का प्रचलन था। कुछ बाजीगरों ने भोली-भाली जनता को लूटने-खसोटने के लिये अनेक दुकानें धर्म की आड़ मे लगा रखी थी। एक सामान्य आदमी के लिये धर्म के नाम पर जो कुछ हो रहा था उसे समझना मुश्किल था। ऐसे समय में कन्फ्युशियस ने सम्पूर्ण देश का अपने विचारों के माध्यम से काया कल्प कर दिया। वे कभी पुर्नजन्म, स्वर्ग व नरक की कल्पना व ईश्वर तथा सृष्टि की उत्पति क्यों व कैसे हुई इन प्रश्नों के जाल में नहीं उलझे। जन्म से पूर्व आत्मा कहां थी व मृत्यु के उपरान्त वह कहां होगी ऐसे प्रश्नों पर भी कन्फ्युशियस ने बुद्ध के समान कभी चर्चा नहीं की। कन्फ्युशियस के प्रयास इसी वर्तमान जीवन को सही मायनो मे सार्थक व सफल बनाने के रहे।

कन्फ्युशियस के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि ये बौद्धिक आदर्शवादी थे। उनका मानना था कि मानव वही करे व वही सोचे जिसे वह अपने वर्तमान जीवन मे मूर्तिमान रूप दे सके। कन्फ्युशियस ने पलायन को जीवन की सबसे बड़ी बाधा माना। उन्होंने सदैव उन आदर्शों को महत्व दिया जिनकी व्यवहारिक जीवन में उपयोगिता है। उनका कहना था कि लोगों द्वारा ऊंचे आदर्शों की स्थापना करना व उस आधार पर अपने जीवन को नही ढाल पाना हम लोगों की सबसे बड़ी आत्म-प्रवंचना है।

कन्फ्युशियस भी राज वंश से ही सम्बन्धित थे बचपन मे ही उन्हें स्वाध्याय का शोक था। इन्हें जो कुछ भी जीवन में अच्छा लगा उसे अपने जीवन मे उतारने का प्रयास किया। अन्धविश्वासों व लोक-परलोक की कथाएं उनकी कसौटी पर खरी नही उतरीं, जिनका उस काल में बड़ा प्रचलन था। यथार्थ जीवन में उनका अटूट विश्वास था। अपने जीवन में सबसे महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने व्यक्ति निर्माण का काम समझा। उन्होंने किसी नवीन धर्म की स्थापना करने की अपेक्षा एक स्कूल खोलना अधिक बेहतर समझा ताकि वे बालकों को सचरित्र कर सकें।

कन्फ्युशियस का कहना था कि बच्चों के स्मृति पटल पर सद्विचारों का बीज सरलता से फलीभूत हो सकता है। जिन व्यक्तियों का मस्तिष्क अंध-विश्वासों व रूढ़िगत परम्पराओं से ग्रस्त हो चुका है उन्हे समझाना शायद मुश्किल हो लेकिन यदि बालकों में सद्विचारों का बीज डाल दिया जायेगा तो कुछ ही वर्षों मे ये बालक समाज को नवीन सोच दे सकेंगे। कन्फ्युशियस ने अपने स्कूल के माध्यम से यह कार्य करके दिखा दिया। वे जीवन निर्माण करने वाले शिल्पी के रूप में विख्यात हो गये।

अपने शिक्षण संस्थान में अध्यापन के अलावा वे समय-समय पर जनता का भी प्रवचनों के माध्यम से जीवन सार्थक बनाने का प्रयास किया करते थे। एक अन्य बात समझने की है वह यह कि जहां बुद्ध व महावीर का प्रारम्भ में जन विरोध हुआ था ऐसा विरोध चीन में कन्फ्युशियस का नहीं हुआ। न ही जीवन के अन्तिम समय में जीसस व सुकरात जैसा कुछ कन्फ्युशियस के साथ घटित

हुआ। चीन की जनता सदैव इस महान् आत्मा की ऋणी रहेगी। उस काल के प्रसिद्ध विचारक लाओत्से ने भी कन्फ्युशियस की बातों को मानकर उन्हें अपने जीवन में ढालने का प्रयास किया।

यद्यपि ये शासन के सर्वोच्च पद पर पहुंचे लेकिन ये रहे सदैव एक सन्त ही। बाद में उन्होंने देश भर में घूमकर अपने विचारों के माध्यम से जन-जागृति के प्रयास किये। वे किसी नवीन धर्म की स्थापना करने के पक्षधर नहीं रहे। उनका मानना था कि प्रत्येक सम्प्रदाय में समय के साथ कुछ बुराइयां भी समाती रहती हैं व एक समय ऐसा आता है जब मूल सत्य का इन सम्प्रदायों से उतना ही सम्बन्ध रहता है जितना किसी खूंटी का किसी कपड़े से। वे अपने पीछे कोई धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं छोड़ गये। छोड़कर गये तो सिर्फ अपनी अमर वाणी।

छट्ठी शताब्दी ई. पू. ही यूनान के जिन नगर राज्यों में जिस विचारक की ख्याति फैल रही थी वे थे सुकरात। ये एथेन्स के रहने वाले प्रकाण्ड विद्वान थे, इनकी विशेषता यह थी कि ये एक लम्बा-सा चोगा पहन कर इधर-उधर घूम अर्ध-रात्रि तक शहर के बाजार में चहल-पहल वाले इलाकों में घूमा करते थे। जहां भी इनके इर्द-गिर्द बीस पच्चीस लोग एकत्र हो जाते ये उनसे ये प्रश्न करने के लिए कहते व अपनी प्रतिभा से उन प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे। इनकी विशेषता यह थी कि आप अत्यधिक विनम्र व शालीन थे। सुकरात ने भी संसार के अन्य विद्वानों के समान आत्म ज्ञान पर बहुत बल दिया। उनका कहना था कि यदि मानव यह जान ले कि उसका धर्म व उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। तो वह अवश्य ही धार्मिक बनने की चेष्टा करेगा। धर्म और कुछ नहीं सत्य मार्ग पर चलने की शिक्षा मात्र है। उनके ओज पूर्ण विचारों ने समकालीन लोगों को बड़ा प्रभावित किया। उनकी वाणी से समाज में व्याप्त अंधविश्वास व कुरीतियों की परम्परा टूटती मालूम हुई व धर्म के नाम पर दुकानें खोलने वाले ठेकेदार बौखला उठे। सुकरात ने दो हजार छ सौ वर्षों पूर्व भी जनता को बताया कि आत्मा मुक्त है व सभी को बाहरी परतन्त्रता से अपने आप को मुक्त कर देना चाहिये।

सुकरात ने मानव मात्र को समान समझा। उनका यह भी मानना था कि व्यक्ति अपने सदाचार व सद्‌विचारों से आगे बढ़ता है।

शहर में वे अकेले ही ऐसे इन्सान थे जो एक लबादा पहने घूमा करते थे। उनकी सटीक व खरी बातें सुनकर कई लोग उनके दुश्मन हो गये। कई बार ऐसे ही लोगों का जन समूह सुकरात की पिटाई भी कर देता था। उनके दुश्मन उन्हें कई प्रकार की यातनाएं दिया करते थे। सुकरात ऐसे लोगों को भी सिर्फ समझाने का प्रयास करते उन से झगड़ते भी कभी नहीं थे।

सुकरात की सीधी-सादी बातों से धर्म पुरोहितों की बड़ी हानि हुई। वे समझने लगे कि इनकी बातो का सीधा आघात हम पर हो रहा है। ऐसे धर्म से जुड़े लोगों ने जिन्हे उस महान् आत्मा से काफी कुछ सीखना चाहिये था व अपने आप को बदल लेना चाहिये था। लेकिन अपने स्वार्थों को न छोड़ते हुए उन्होंने सुकरात की कद्र करना तो दूर वरन् उन को गिरफ्तार करवा दिया। सुकरात पर कुशिक्षा देने व लोगो को भड़काने का आरोप लगाया गया। उन पर मुकद्मा चला व उन्हें मौत की सजा हुई।

एथेन्स के बुद्धिजीवी लोगो को इस खबर से बड़ा दुख हुआ। उन्हें लगा कि हमेशा की तरह अबकी बार भी अज्ञान के हाथों ज्ञान की हत्या हो रही है। ऐसे लोगों ने सुकरात को रिहा करवाने के प्रयास किये। न्यायाधीशों ने उन लोगों से कहा कि यदि सुकरात उपदेश देना छोड़ दें तो उसे माफ किया जा सकता है।

सुकरात ने न्यायाधीशों की बात का बड़ा ही सुन्दर जवाब दिया। उनका कहना था यदि मैं आपकी बात मान लेता हूं तो यह मेरा नहीं ईश्वर का अपमान होगा। यदि मैं शील-सदाचार की बात न करूं, जो सत्य है उसे बोलना छोड़ दूं, तो इस जीवन का महत्व क्या ? मेरी अन्तर आत्मा ऐसा जीवन जीने की अपेक्षा नहीं जीना अधिक बेहत्तर मानती है। यही मेरी दृष्टि में श्रेष्ट है।

किन्ही कारणों से मृत्यु दण्ड के उपरान्त भी उन्हें तेईस दिनो तक जीवित रखा गया। वे उन दिनो में भी खूब आनंद से रहे। वे कहा करते थे

कि मृत्यु शत्रु नहीं मित्र है। अतः किसी भी प्रकार के भय का तो सवाल ही नहीं।

जिस दिन उन्हें विष पान कराना था उस दिन विष पान कराने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे विष तैयार कर रहा था। सुकरात स्वयं उसके पास गये और बोले, जहर बनाने में देरी क्यों, जरा जल्दी तैयार करो। वह व्यक्ति सोचने लगा कैसा विचित्र प्राणी है यह। मैं सोचता हूं कि थोड़े समय के लिये और जी ले, यह है कि कहता है जहर पीने के लिये थोड़ा जल्दी लाओ। जब जहर का प्याला इनके सामने लाया गया तो उन्होंने इसे इस प्रकार पी लिया मानो कोई शर्बत हो। ऐसी थी यह महान् आत्मा जिसने सत्य का साथ, सदाचार का साथ, जीते जी कभी नहीं छोड़ा।

इन चिन्तकों की वाणी आज भी उतनी ही शाश्वत है जितनी छब्बीसौ वर्ष पहले थी। हजारों वर्षों के बाद भी आदमी नहीं बदला। आदमी वहीं का वही है। आज भी आवश्यकता राग, द्वेष, घृणा व शत्रुता जैसी तुच्छता से ऊपर उठकर देखना व सोचना आज तक भी हमने शुरू नहीं किया। इसी लिये आज भी आवश्यकता है इस बात की, कि संसार के इन महान् चिन्तकों की वाणी को अपने भीतर प्रवाहित होने दें।

❀❀

धर्म व साम्प्रदायिकता

जहां एक तरफ धर्म मनुष्य के चिन्तन व जीवन का सबसे उच्च स्तर है वहीं धर्म के परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक विद्वेष का जहर उसका निम्नतम स्तर है। इस तरह हम देखते हैं कि दो विपरीत प्रभाव धर्म के माध्यम से एक साथ दृष्टिगोचर होते दीख पड़ते हैं। जरा गौर करने पर ये दोनों बातें अलग-अलग हो जाती हैं। फिर इनके बीच का अन्तर हमें स्पष्ट मालूम पड़ता है।

आज हम धर्म के मूल स्वरूप को समझे बिना 'सद्‌भावना' की, 'विश्व बन्धुत्व' की बातें करते है। इसीलिये ये बातें हमारी समझ के बाहर रहकर ही खो जाती हैं। यही कारण है कि कितनी ही बार इस तरह की आम सभाओं मे भी दंगा भड़क जाता है क्योंकि हम ऊपर-ऊपर से कौमी एकता की बात करते है व हमारे भीतर कहीं दुर्भावना ही भरी होती है।

आज हम हिन्दुत्व की रक्षा की बात करते हैं लेकिन ऐसी बात करते समय हिन्दू धर्म की रीढ़ 'सहिष्णुता' को भुला देते हैं। हम जीसस की शालीनता को भूल जाते हैं व ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये कुछ भी कर गुजरने को तैयार रहते हैं। सच, हम कभी अपने आप से संघर्ष करना ही नहीं चाहते, मजहब के मूल तक पहुंचने की बात तो बहुत दूर की है।

यही कारण है कि सद्‌भावना की बात करते समय भी हमारे चेहरों की तिलमिलाहट भीतर भरी हमारी दुर्भावना की ओर संकेत करती है। तब सद्‌भावना की बात बस एक गोष्ठी के आयोजन या कहीं छोटे बड़े अखबार के किसी कोने का एक हिस्सा बनकर लुप्त हो जाती है, कहीं कुछ भी नहीं बदलता। दंगे भड़कते रहते हैं, अशान्त मन के लोग निर्दोषों का खून बहाते रहते है। अंगारे दहकते रहते हैं, आग जलती रहती है, मानवता की बातें उस आग की लपटों के

बीच अपना महत्व खोती रहती हैं। जितनी बात बढ़ती है उतनी बात बढ़ती है 'परिणाम कुछ भी नहीं।'

जरा गौर करने पर हमें पता चलता है कि हमारे पारिवारिक संस्कारों मे कहीं ऐसा जहर घोला जा रहा है जो जन्म से ही समुदायों के आधार पर अलगाव वाद मे हमें दीक्षित कर रहा है। हम बाहर सद्‌भावना की बात जितनी करते हैं उतनी अपने बच्चो को घर बैठा कर दुर्भावना धर्म के नाम पर सिखा देते हैं।

हमारा बाहरी मन सद्‌भावना की बात इसलिये करता है क्योंकि ऐसी बातों से समाज मे रहकर चार व्यक्तियों के सामने हम अपने अहम्‌ की तुष्टि करते हैं। लेकिन ऐसा भी सिर्फ हमें लगता है। अहंकार तुष्ट होकर और बड़ा हो जाता है। ऐसे मे भला 'सद्‌भावना'की बात कहा व किसको समझ मे आयेगी।

अनेक रूपों मे धर्म की आड़ से हम अपने अहकार को सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं। जैसे दवाखाना, धर्मशालाए, स्कूल, कॉलेज आदि का निर्माण करवाते हैं फिर ऐसे मानव मात्र के कल्याण से जुड़ी संस्थाओं को भी हम धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर आपस में बांट लेते है। कई बार तो हम धार्मिक आधार पर इतने निष्ठुर हो जाते हैं कि सार्वजनिक उपयोग को मद्दे नजर रखकर बनाये गये कुओं व बावडियों तक से प्रत्येक जाति व सम्प्रदाय के लोगों को पानी तक नही पीने देते। चाहे कोई प्यास मे तड़फ कर दम ही क्यो न तोड़ दे। धर्म को भी हमने छुई-मुई के पौधे जैसा बना डाला है।

आज के युग मे विश्व बन्धुत्व जैसे शब्द का अर्थ न समझते हुए हमने इस शब्द को रटना प्रारम्भ कर दिया है। जबकि रटने से आदमी जरा भी नही बदलता, बदलने के लिये परिवर्तन की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर एक आदमी सारी जिन्दगी राम नाम का जाप करे या किसी भी नाम की माला फेरे व अपने को बदलने का प्रयास बिल्कुल न करे वह अपना समय ही नष्ट करेगा। इसी तरह एक दूसरा आदमी स्वयं आत्म सुधार हेतु राम नाम की माला फेरे व स्वयं को बदल डालने का हर मनके के जाप के साथ प्रयत्न करे तो

ऐसे व्यक्ति में परिवर्तन आ जायेगा। उसके लिये प्रभु मिलन के द्वार खुल जायेंगे। उसके प्रयास सफल होंगे। फिर उसे माला फेरने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। इसके विपरीत रटने वाला कहीं नहीं पहुंचेगा। वह भीतर से खोखला ही रह जायेगा।

धर्म इन्सान को मानवता का पाठ सीखाता है। प्रेम, प्यार व सद्भाव से जीना सीखाता है। हमे अन्दरुनी रूप से कहीं मुक्त करना सीखाता है व ऐसे सभी कामों को सीखने के लिये आवश्यकता है अपने आप से संघर्ष करने की।

लेकिन आज संसार ने धर्म से सीखी। धर्मान्धता। न जाने कितनी बार इस धरती पर बही है धर्म की आड में खून की नदियाँ। धर्मान्ध का शाब्दिक अर्थ होता है, 'धर्म का अन्धा'।

आज सभी धर्मों को मानने वाले अनुयायी अपने आप को एक दूसरे से श्रेष्ठ बताने में लगे है। जबकि धर्म के साथ कही कोई 'कम्पीटीशन' नहीं बचता।

एक तरफ समुदायों मे विभाजित हम लोग दूसरे समुदायों की जहां चुन–चुन कर बुराइया खोजने मे लगे रहते है वही दूसरी तरफ कोशिश इस बात की करते हैं कि अधिक से अधिक लोग हमारे समुदाय मे विश्वास रखना प्रारम्भ कर दें।

विश्व बन्धुत्व की बात जब ऐसे लोग करते है तो उनकी खोखली बातें हवा होने जैसी होती है, उनका कही कोई असर नही होता।

समुदायो की भिन्नता को छोड़ जब तक हम एक दूसरे समुदायों की श्रेष्ठताओं को देखना, उनसे कुछ सीखना, प्रारम्भ नही कर देगें, तब तक विश्व बन्धुत्व जैसी समानता का धरातल बनना कठिन होगा।

जिस तरह धर्म की मूल बातों के साथ धर्म पुरोहितों के निजी स्वार्थ जुडे नहीं होने चाहिये ठीक उसी प्रकार विश्व बन्धुत्व की बात करते समय भी समुदायो के स्वार्थ ऐसी बात के साथ जुड़े नहीं होने चाहियें। तीसरी बात विश्व सद्भावना [illegible] एक नवीन सम्प्रदाय विशेष की स्थापना भी

नहीं होनी चाहिये। अब हम स्वयं किसी नवीन सम्प्रदाय का एक संकीर्ण दायरा बना किसी दूसरे से अपनी संकीर्णताओं को छोड़ने की बात कहेंगे तो उसका कोई लाभ नहीं होगा। ऐसे नवीन सम्प्रदायों के पास भी विश्व बन्धुत्व की एक ओट होती है जिसके पीछे अपने सम्प्रदाय से जुड़े स्वार्थ ही प्रमुख होते हैं। इन सभी सम्प्रदायों द्वारा विश्व बन्धुत्व की जो बात कही गयी है उसे तो हमें हृदय से मान लेना चाहिये, बाकी सम्प्रदायों को स्वीकार करने या न करने से कहीं कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

सृष्टि की एक विशेषता है कि उसने सभी मानवों को एक दूसरे से भिन्न पैदा किया है, शारीरिक क्षमताओं से, बुद्धि से, शक्ल व सूरत से तथा विचारों से।

समानता है तो वह यह कि धरती हमारी एक ही है। सूर्य के प्रकाश पर सबका बराबर का हक है। नदियां अपने पानी का उपभोग करने से किसी को नहीं रोकती। वृक्ष, फल, फूल व पौधे सभी के लिये समान सौन्दर्य बिखेरते हैं। प्रकृति के हम सब बराबर के हिस्सेदार हैं। ऑक्सीजन का उपयोग सभी कर रहे हैं। हमारी धमनियों में प्रवाहित होने वाला रक्त एक ही जैसे तरीके से कार्य कर रहा है। ईश्वर प्रदत्त किसी भी कार्य में कहीं कोई भेद नहीं।

फिर न जाने क्यों हम थोड़े से समय भी इस संसार में प्यार से रह नहीं सकते। कितने गुस्सैल, दम्भी व अहंकारी हैं हम लोग। अपने समकालीन जीवन की यात्रा के सहभागियों के साथ कितना वैमनस्य है हमारा। इस संसार में किसी वस्तु की कोई कमी नहीं। कमी है तो प्रेम की, एक दूसरे के दुख दर्द को अपना दुख दर्द मानने की, अपने को समुदायों में बांट कर अलग-अलग समझने की। इतनी समताओं को विषमताओं में हमने परिवर्तित कर दिया है कि जो बहुतत्व में एकत्व का विधान है उसी को आज भुला दिया गया है। सृष्टि के सारे तादात्म्य टूट गये हैं हमारे।

संसार में हालांकि एक ही धर्म, एक जैसी पूजा-उपासना विधि व सभी के एक जैसे विचार होना सम्भव नहीं है लेकिन सभी द्वारा अपने धर्म व

मजहब की मूल बातों को मानकर आत्मसुधार किया जा सकता है। हम सभी के लिये ऐसा करना सम्भव है।

संसार के सभी प्रज्ञा पुरुष जो कुछ भी करते हैं वह इन्सानों के खोये हुए सन्तुलन को सन्तुलित करने का प्रयास मात्र है। इन्सानों के इस सन्तुलन को बनाये रखना ही धार्मिक कृत्य भी है। धर्मों के समन्वय भाव की बात का सार भी यही है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रज्ञा पुरुषों द्वारा 'वासुदेव कुटुम्बकम' की बात कही गयी है मगर हम इस बात को अपने व्यवहार मे नही ला सके। ये बातें सिर्फ किताबों के पन्ने रंग कर रह गयी या बुद्धीजिवियों के चिन्तन-मनन का विषय बन कर रह गयीं।

प्रत्येक शहर मे कौमी एकता पर गोष्ठियां आयोजित की जाती हैं व बहुत जल्दी भुला भी दी जाती है। हम कभी कौमी एकता की बातों को व्यवहार में लाने के लिये किसी व्यवहारिक प्रणाली का जीवन मे प्रयोग नही करते। आधुनिक युग में सद्भावना की आड़ मे अनेक संघों की स्थापना हुई है। धीरे-धीरे ये नवीन समुदाय भी हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाइयो की श्रेणी मे आकर ही खड़े हो रहे हैं। आने वाले समय मे एक दुविधा और आयेगी हमारे सम्मुख, वह यह कि ये सभी संघ अपने विचारों के माध्यम से अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाकर स्वयं को बहुत बड़ा माध्यम बना कर भी सभी एक दूसरे से अलग रहते हुए विश्वबन्धुत्व की बात करेंगे। इन सभी को एकत्र करना असम्भव होगा।

आज भी हमारे देश मे आनंदमार्गी, महर्पिशिष्य, ओशोभक्त, प्रजा पिताब्रह्म कुमारी समुदाय के लोग, जय गुरुदेव के चेले, सिरडी के सांयी बाबा के श्रद्धालु, तेरा पंथी व श्रीराम शर्मा और शिवानंद स्वामी के शिष्यों, निरंकारियो व पांचों राधा स्वामी सम्प्रदाय के लोगों में कहीं कोई तालमेल नहीं है, सब के भक्तगण एक दूसरे की आलोचना करने में लगे हैं। सब अपने गुरुओं को श्रेष्ठ व कृष्ण का अवतार ब्रह्मा का अवतार मानते हैं। जबकि ये लोग यदि एक दूसरे की आलोचना न करें एवं एक दूसरे से अच्छाइयां ग्रहण करें तो भारत का कायाकल्प

होने देर न लगे, परन्तु यहां भी मानव मन ने एक दूसरे को 'इग्नोर' कर दिया। अपने गुरु व अपने आप को 'सुप्रिम' मान लिया। चाहे अनचाहे मन से दूसरों को कटवां करने की सभी व भक्तों सन्यासियों ने कोशिश भी की।

यद्यपि इन सभी संघों द्वारा सुन्दरतम कार्य किये गये। लेकिन हमने फिर वही दरारें पैदा कर लीं इन समुदायों के बीच। जबकि सभी गुरुओं ने भी विश्व बन्धुत्व की बात कही। सब प्रकार की कटुता के बन्धन तोड़ने की बात कही। मगर आज इनके भक्तों की आपसी कटुता-प्रत्यक्ष दीख पड़ती है।

वैचारिक मत भेद होना अलग बात है। अपने विचारों के सम्मुख दूसरे के विचारों को बिल्कुल तवज्जो न देना उससे भिन्न बात है। धर्म के माध्यम से हम सीमा खींच लेते हैं जैसे हम सब ब्राह्मण भाई-भाई। भ्रातृत्व का भाव है लेकिन एक सीमा है उसके लिये एक ही जाति का होना जरूरी है। अन्यथा भाई चारे से हमारा कोई सरोकार नहीं।

जब भी हम मानवता की बात करते हैं तो वह सम्पूर्ण मानव जाति की बात होती है। फिर अलग-अलग समुदाय गौण हो जाते हैं। कौन कह रहा है? किस संघ का व्यक्ति कह रहा है? किस जाति का व्यक्ति कह रहा है, इन सब बातों का कोई महत्व नहीं रहता। महत्व रहता है कहे गये शाश्वत सत्य का। एक ऐसा सत्य जो सभी संघों का मूल हो सकता है।

हम किसी भी समुदाय को मानने वाले हों, किसी भी गुरु में हमारी चाहे अटूट श्रद्धा हो फिर भी हमें दूसरे समुदाय व गुरुओं से ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध व प्रतिस्पर्धा रखने का कोई अधिकार नहीं है।

जिस तरह पानी की प्यास को पानी ही बुझा सकता है अन्य कोई पदार्थ नहीं। ठीक उसी प्रकार यदि सब संघों की, सब धर्मों की मूल बात प्रेम, प्यार, परोपकार, भाईचारा, आत्मीयता, अहिंसा आदि से सम्बन्धित है। तो आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी इस प्यास को बुझाने के ठीक-ठीक उपाय सोचें। सम्प्रदायों में बटे रहकर हम अपनी इस प्यास को नहीं बुझा सकते। समुदाय से

जुड़े भक्त ऐसा सोचते हैं कि हम सभी को अपने समुदाय से जोड़ सम्पूर्ण विश्व को एक कर दें। जबकि विश्व बन्धुत्व का यह अर्थ कदापि नही है।

विश्वबन्धुत्व का अर्थ है हम कोई विनाश नही करें। किसी भी बात को आधार बना मानव जिस विनाश करने में लगा है हम वह विनाश न करें। विनाश का अधिकार नियति ने अपने पास रखा है। सभी के भौतिक शरीर का विनाश निश्चित है। विनाश करना कोई विशेष बात नहीं।

धरती पर बहुत सी बार ऐसे क्षण आते हैं जब कहीं कोई भूकम्प आ जाता है, कही बाढ़ आ जाती है, सूखा पड़ जाता है, कभी-कभी कोई बिमारी या दुर्भिक्ष भी फैल जाता है। तब सम्पूर्ण संसार की सद्‌भावना पीड़ित लोगों से जुड़ जाती है। कुछ समय पूर्व रूस मे भूकम्प आया तो ससार भर के लोगों की संवेदना रूस के साथ हो गयी। सभी का हृदय द्रवित हुआ। इसी प्रकार कभी मदीना में या कुम्भ के मेले के अवसर पर भगदड़ में कुछ लोग मारे जाते हैं तब भी सभी को दुख होता है। अकारण जब भी विनाश होता है तो उसके प्रति आम इन्सान की सद्‌भावना सहज रूप से ही जुड़ जाती है। एक बार तो वह यह नही सोचता की मरने वाला कौन था, किस जाति का था। यह सब सोच तो बाद का है।

वैसे ही प्राकृतिक विपदाओं से इतना विनाश होता है। इस विनाश को रोकना भी विज्ञान के लिये एक चुनौति है। उसी प्रकार हम सब भी किसी का *विनाश न करने का संकल्प करें तभी सही अर्थों में विश्वबन्धुत्व की बात सार्थक* हो सकती है।

हमारे द्वारा ऐसा कोई भी कार्य न किया जाये जिससे किसी दूसरे को दुख पहुंचता हो। सभी मन्दिर, मस्जिद गिरजा, गुरुद्वारे मे कहीं भी व्यक्ति जाने के लिये स्वतंत्र है। उसे रोकने का किसी को कोई अधिकार नही है, न ही यह सोच-कर दुखी होने का कि जिस मार्ग से मैं अपनी यात्रा तय करना चाहता हूं उसमे दूसरे अपनी यात्रा क्यों नहीं करते।

सभी को अपने विचारों को पूर्ण स्वतंत्रता है लेकिन दूसरे की उन्नति के मार्ग में बाधक बनने की नहीं। जब हम पूरी एकाग्रता के साथ अपने आप को बदल लेंगे तभी धर्म व साम्प्रदायिक सद्‌भाव की बात सार्थक हो सकेगी। ❀

ब्रह्माण्ड में मानव का अस्तित्व

एक निराकार शून्य है जो हमें आंखों मे विराट-सा जान पड़ता है। एक ऐसा शून्य है जहां इतने ग्रह नक्षत्र बह रहे हैं जिनकी गिनती भी इन्सान अपने पूरे जन्म में पूरी नहीं कर सकता।

सब कुछ इसी शून्य से पैदा होता है व इसी शून्य में विलीन हो जाता है। चाहे वह पृथ्वी पर खिला एक गुलाब हो या हमारे सौर मण्डल का प्रतिभा सम्पन्न सूर्य। सब का उदय शून्य मे ही होता है व विलीनीकरण भी।

इस शून्य में ही सारी सम्भावनाएं हैं। इन्सान के भीतर बाहर सभी जगह यही निराकर शून्य विद्यमान है। इसे ही ब्रह्माड कहा गया है।

ब्रह्माण्ड का शाब्दिक अर्थ है सत चित्त आनंद, जगत मे बीज रूप मे व्याप्त।

सभी आकाशीय पिण्डों का ब्रह्माण्ड मे अपना आनंद है। ग्रह, उपग्रह धूमकेतु उल्कापिण्डों व सूर्यों का अपना होना है।

इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी की स्थिति उतनी भी नहीं है जितनी समुद्र में एक बूंद पानी की है क्योंकि समुद्र की सीमाएं हैं ब्रह्माण्ड की बात तो सीमाओं के पार की है।

कभी विज्ञान इतनी प्रगति कर सकता है कि एक बूंद पानी समुद्र में डाल कर उसी बूंद को वापस निकाल ले। कुछ हजार वर्ष बाद ऐसा सम्भव हो सकता है, लेकिन कोई भी वैज्ञानिक कभी भी ब्रह्माण्ड को किसी सीमा में नहीं बांध सकता।

अतः ब्रह्माण्ड में इस धरती को जो स्थान प्राप्त है वह हमें विदित होना चाहिये। मानवों के अस्तित्व की बात तो बहुत दूर की है।

एक छोटा-सा बीज जब अंकुरित होता है तो धीरे-धीरे मिट्टी फोड़ कर धरती से बाहर आता है फिर धीरे-धीरे एक विशाल वृक्ष में परिवर्तित हो जाता है। अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचने के के बाद वह फिर मिट्टी में ही मिल जाता है। वह यदि कहीं कुछ छोड़ता है तो अपने होने की सम्भावना छोड़ता जाता है। उसी वृक्ष से कुछ बीज गिरते रहते हैं और वृक्षों में परिवर्तित होते रहते हैं।

उसी प्रकार अण्डे को फोड़ पक्षी बाहर आता है। अपनी सम्भावना के अनुरूप वह पूरा बड़ा होता है फिर वह समाप्त हो जाता है व भावी पक्षियों को अण्डों के रूप में छोड़ जाता है।

मानव भी इसी सृष्टि का एक अंग है वह भी कुछ समय जीवित रह कर मर जाता है छोड़ जाता है। अपने पीछे कुछ अपने जैसे बीज, कुछ मानवों की फिर से इसी प्रकार खिलने की सम्भावना।

प्रकृति की सारी वस्तुओं के सम्बन्ध में एक से नियम लागू होते हैं कहीं कोई भेद नहीं। सभी खिलते हैं व सभी इस धरा में मिल जाते हैं।

लाखों वर्ष पूर्व भी प्रकृति, पशु, पक्षी, मानव सभी विद्यमान थे। आने वाले समय में सभी विद्यान भी रहेंगे।

हम देखते हैं कि जहां भी पानी बहता है वहीं धरती पर कुछ कटाव बन जाते हैं जैसे-पहाड़ की बर्फ पिघल कर एक नदी का रूप धारण कर लेती है। यह नदी पत्थरों को, पहाड़ की चट्टानों को काटकर एक रास्ता-सा बनाती है पहाड़ की चट्टानों को बालू रेत में परिवर्तित करने का प्रयास भी करती है। फिर नदी माध्यम बनती है उन बालू रेत के कणों को समुद्र तक ले जाने का समुद के स्तर पर व समुद्र के आस-पास यही बालू जमती रहती है। फिर से चट्टानों के रूप में परिवर्तित होती रहती है, भविष्य के पर्वतों का निर्माण करती रहती है। आज जो हिमालय दिखाई दे रहा है कभी वहां समुद्र था। आज जहां समुद्र दिखाई दे रहा

है कभी वहां हिमालय के समान पर्वत शृंखलाएं होंगी। यही क्रम चलता रहेगा इस गतिमान जगत् में बालू से पर्वत शृंखलाओं की परिणिती फिर से बालू के कणों में होती रहेगी।

मिट्टी के ये छोटे-छोटे कण भी बीज हैं इस ब्रह्माण्ड के। इस ब्रह्माण्ड में जितने भी आकाशीय पिण्ड दिखाई देते है वे हमारी धरती के समान इन्हीं कणों से निर्मित हैं।

लाखों-करोड़ों वर्ग किलोमीटर तक फैले ये अनन्त आकाश में फैले आकाशीय पिण्ड इन्हीं कणों से बने हैं। सूर्य, चन्द्रमा व तारों में यही कण विद्यमान हैं। सूर्य के गर्भ में जो ऊर्जा विद्यमान हैं, सूर्य में जो विस्फोट हो रहे हैं वह भी इस अणु मात्र के विभाजन से ही हो रहे हैं।

मिट्टी के छोटे-छोटे कण बड़े ही रहस्य अपने भीतर छिपाये हुये हैं करोड़ों-अरबों प्रकाश मीलों की ये कण यात्रा कर चुके हैं फिर भी जब इनका सन्तुलन बिगड़ता है तब ये ब्रह्माण्ड की गति का साथ देने हेतु दूसरे आकाशीय पिण्डों में मिल जाते हैं। कभी-कभी आकाश में हमे तारे टूटते-से दिखाई देते हैं, ये उल्का-पिण्ड हैं जो स्वछन्द इस ब्रह्माण्ड में बह रहे थे। जैसे ही इनकी गति इस गतिमान जगत से धीमी पड़ती है वे किसी अन्य ग्रह के गुरुत्वाकर्षण सीमा के भीतर आ जाते हैं फिर तेजी से उस बड़े आकाशीय पिण्ड की तरफ गिरते नजर आते हैं फिर उसी में मिल कर उसका हिस्सा बन जाते हैं।

ये उल्काएं भी किसी बड़े आकाशीय पिण्ड से कभी अलग हुई थी व वापस मिल गयीं एक बड़े आकाशीय पिण्ड में ही। फिर रेत के कण अलग होंगे व फिर कभी कहीं मिल जायेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ छोटे पिण्डो के समन्वय से एक बड़ा पिण्ड बन जाये।

वास्तव में जो कुछ हमें मूर्त रूप में दिखाई देता है। उसके पीछे बड़ा ही सूक्ष्म छिपा होता है वहां कहीं सूक्ष्म दिखाई देता है। उसके पीछे बड़े ही मूर्त रूप छिपे होते हैं। यदि इस बात को भी हम समझ लें तो सारे भेद समाप्त हो जायें।

हमारे प्राचीन मुनि कपिल ने कहा था—'नाशः कारणलय' इसका शाब्दिक अर्थ है कारण मे लय हो जाना। कोई वृक्ष है । पशु–पक्षी है, मानव हैं, सब अपने कारण मे लौट जायेंगे मानव मरता है तो पंच भूत तत्वों में उसका लय हो जाता है जब कोई ग्रह नक्षत्र ध्वस होता है तो उसका भी लय हो जाता है यानि जिन तत्वों के योग से वह बनता है वे ही अलग–अलग हो जाते हैं । इसी को नाश कहा जाता है जबकि कार्य व कारण दोनो अभिन्न हैं, इनमें कहीं कोई भिन्नता नहीं ।

जितने भी पदार्थ मानव अपने उपभोग के लिये निर्मित करता है वह कुछ अणुओं का योग है-मकान, मेज-कुर्सी आदि । जब इन अणुओं का आपसी योग नहीं रहता तब ये अणु उसी रूप मे चले जाते हैं जिसे हम सूक्ष्म की संज्ञा देते हैं । ऐसी किसी वस्तु को देखने की भी व न देखने की भी हमारी सीमाएं हैं ।

हाइड्रोजन व आक्सीजन अलग–अलग रहने पर हमें दिखाई नहीं देती । इनका सयोग होने पर पानी हमे दिखाई दे जाता है ।

समस्त सृष्टि मे कुछ तरंगें विद्यमान हैं जो उठ रही हैं व बैठ रही हैं । जो कुछ इस संसार में है वह तरगों के रूप मे जब फैलता है तो मूर्त रूप ले लेता है व ग्रह-नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, तारे दिखाई देने लगते हैं । जहां ये तरंगे सिकुड़ती हैं वहीं हमें सूक्ष्म नजर आने लगता है ।

एक क्रम मे गतिमान है सब कुछ इस जगत में । बीज से वृक्ष व वृक्ष से बीज सदैव बन रहे हैं । वृक्ष का अन्त है मगर बीज सदैव विद्यमान है इसी लिये मनीषियो ने सत्, चित, आनंद को इस जगत मे बीज रूप मे ही व्याप्त माना है ।

बीज रूप में ही आनंद की भी सारी सम्भावाएं इन्सान मे व्याप्त मानी है पर हम अभी इस सत्, चित, आनंद की स्थिति से बहुत दूर हटकर कहीं किसी नारकीय स्थिति में जी रहे हैं, अपने बीज को, पूर्ण सम्भावना को जरा भी पहचान नहीं पाये हैं ।

सारी सृष्टि मे एक बड़ी समानता है जहां से प्रारम्भ है हमारा अन्त भी शुरूआत है उसी प्रारम्भ की । यही कारण है कि सृष्टि को अनादि कहा

गया है। सृष्टि कभी व्यक्त जान पड़ती है कभी अव्यक्त। ऐसा हमारे अज्ञान के परिणाम स्वरूप होता है वरन् सदैव ही व्यक्त व अव्यक्त दोनों रूपों में विद्यमान है।

जो प्रकृति के नियमों को जानकर उसके बाहर चला जाता है वही व्यक्ति मुक्ता अवस्था को प्राप्त होता है। वह फिर ईश्वर हो जाता है। ब्रह्म से उसे भिन्न नही माना जा सकता। मुक्त होना मानव मात्र के बीज की एक सम्भावना है। जीसस, पैगम्बर, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर ये सब उस सम्भावना तक पहुंचे। कोई भी उस सम्भावना तक अपनी यात्रा तय कर सकता है। इसी यात्रा को तय करने के लिये हम आज हैं वर्तमान मे। वर्तमान के लिये ही हमारा जन्म हुआ है फिर हम वापस लौटेंगे इसी वर्तमान में आने के लिये।

यद्यपि मानव मन का जितना सम्बन्ध भीतरी ब्रह्माण्ड से है उतना ही बाहरी ब्रह्माण्ड से है, पर हमे अपनी सारी इन्द्रियां बाहर झांकती-सी दिखाई देती हैं। आंखें बाहरी सौन्दर्य के समाचार भीतर के जगत को भेजती-सी दिखाई देती हैं नाक बाहरी गंध को महसूस करती है, जीभ स्वाद को चखती है। हम जो कुछ भी कर्म करते हैं दूसरों को देख कर किये जाने वाले कर्म ही अधिक होते हैं। इस दौड़-धूप मे सब महसूस करने वाला जो साक्षी भीतर बैठा है हम उसे भूल जाते हैं। हमारा अज्ञान रूपी अन्धेरा इतना गहरा जाता है कि उस अन्धेरा मे कभी भीतर जगत में झाक कर भी देखते हैं तो भीतर बैठा साक्षी नजर ही नही आता।

जबकि कोई साक्षी होता है जो हमारे सोच से जुड़ा होता है। यदि हमारा सोच नकारात्मक है तो किसी भी बात के अन्त मे एक प्रश्नवाचक चिह्न शेष बचता है। क्यों? यदि हमारा सोच सकारात्मक है तब सब कुछ ठीक जान पड़ता है नियति व उसके नियम सभी के लिये समान-से दिखाई देते हैं। अत्यधिक तनाव से व्यक्ति नकारात्मक हो जाता है तनाव रहित रहने से सकारात्मक। इन सभी बातों को महसूस करने वाला, कुछ प्रश्नों को उठाने वाला, कुछ प्रश्नों का जवाब मिलने पर उन्हें गिराने वाला जो भाव रूपो से पहचाना जाता है, वही साक्षी है।

जब यह साक्षी किसी एक तरफ एकाग्र होता है तो इसे बहुत-सी अपने आस-पास के वातावरण की भी अनेक ध्वनियां सुनाई नही पड़तीं। जैसे अभी हमारे पास ही चिड़ियां चहचहा रही हैं, घड़ी की टक् टक् की आवाज आ रही है, बाहर कहीं कोई ट्रैफिक आवाज कर रहा है, कहीं कुछ लोग आपस में एक दूसरे से कुछ बतिया रहे हैं, बहने वाली हवा हमें प्रभावित कर रही है। ऐसी बहुत सी आवाजें हैं जिनकी तरफ हमारा ध्यान नही है। बहुत-सा ऐसा शोर है वातावरण में जिससे हम अनभिज्ञ हैं।

ऐसा इसलिये होता है कि हमारी जो आखें देख रही हैं उसके पीछे देखने वाली कोई दर्शन इन्द्रिय और है। हमारे जो कान सुनने वाले हैं उसके पीछे कोई कर्णेन्द्रिय और है। जो स्वाद चखने का काम करने वाली जीभ है उसके पीछे स्वाद महसूस करने वाली इन्द्रियां और हैं यदि ऐसा न हो तो इन्सान का जीना दूभर हो जाय। ये सभी इन्द्रियों के रूप में जो हमारे यन्त्र हैं वह खराब हो जाये।

जिस तरह पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल है उसी तरह मानव का भी अपना गुरुत्वाकर्षण है जो उसे किसी भी काम को करने से पहले सही, व गलत की एक सूचना जरूर देता है जो हर तरह से मानव के भौतिक शरीर की रक्षा करने का प्रयत्न करता है। जिस तरह धरती की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से हमारी थोड़ी-सी ऊर्जा का ह्रास होता है मगर यह ह्रास हमारे जीने के लिये आवश्यक है। यदि यह गुरुत्वाकर्षण बल न हो, तो हम चलते हों तो चलते ही रह जायें फिर कोई ग्रह नक्षत्र भी हमें अपनी सीमा में बांध नही सकेगा ऐसी अवस्था में जीवन या अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

सृष्टि रचना में कहीं कोई भूल नही इसे सही रूप से समझने की शक्ति मानव मात्र मे विद्यमान है। यही कारण है कि मानव ब्रह्माण्ड मे सर्वश्रेष्ठ है। वही सिर्फ ऐसा है जिसे अपने होने का आभास है। मानव के पास जैसा विवेक वैसा ब्रह्माण्ड में अन्यत्र किसी प्राणी के पास नहीं है।

मानव मन का सम्बन्ध बुद्धि से है, बुद्धि का साक्षी से, साक्षी का आत्मा से। आत्मा पूर्ण है, वहां कोई विकास की सम्भावना नहीं है मानव के कर्मों

को महसूस करने वाला सूक्ष्म साक्षी भाव है जिसे सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है। एक शरीर की समाप्ति के बाद मन बुद्धि का भी समापन हो जाता है, बचता सूक्ष्म शरीर है सब कुछ महसूस करने वाला साक्षी। साक्षी का सम्बन्ध आत्मा से है। प्राचीन मुनियों का ऐसा मानता था कि तेरह दिनो में यह सूक्ष्म शरीर फिर से भौतिक शरीर ग्रहण कर लेता है इसलिये हिन्दुओं मे मृत्यु उपरान्त तेरहवा मनाये जाने की प्रथा है। यह वह समय है जब एक वृक्ष का समापन व बीज के अकुंरित होने की फिर सम्भावनाए दीख पड़ती हैं।

कर्म की महत्ता के परिणाम स्वरूप ही हमारे देश में प्राचीन काल की जाति-प्रथा कर्म पर आधारित थी, जन्म पर नही। ताकि जाति-प्रथा के परिणाम स्वरूप प्रत्येक भौतिक शरीर की समाप्ति के बाद उसे पुनः जन्म अपने कर्मों के अनुरूप मिलने मे सहयोग मिल सके।

आज जन्म पर आधारित जो जातिया हैं यह कर्म पर आधारित समाज का एक बिगड़ा हुआ रूप है। जबकि जाति प्रथा की स्थापना भी चेतना के विकास को मद्दे नजर रख कर की गयी थी। ताकि मरणोपरात किसी सूक्ष्म शरीर को उसके कर्मों के अनुरूप वापस देह मिल सके। बाद मे जब पिता के व्यवसाय के अनुरूप बेटों ने भी व्यवसाय प्रारम्भ कर दिये तब जाति-प्रथा कर्म के आधार पर निर्धारित होने की बजाये जन्म पर निर्धारित होने लगी व जाति-प्रथा के नियमों मे लचीलापन था वह खो गया। जाति-प्रथा के नियम कठोर हो गये। इसी कठोरता के परिणाम स्वरुप विभिन्न जातियों के विकास की सम्भावनाएं समाप्त हो गयी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र समाज के विभिन्न लोगों के टाइप थे। जिन लोगों का आनंद अध्ययन-अध्यापन था व कार्य आध्यात्मिक शिक्षा देना था वे ब्राह्मण जाति के माने जाते थे। युद्ध ही जिनका आनंद था, तलवार की चमक ही जिन्हें पूर्णत्व की तरफ बहाती थी, ऐसे व्यक्तियों की जाति क्षत्रिय थी। व्यवसाय ही जिनके जीवन की धुरी थी, जो कला के प्रति समर्पित थे वे सभी वैश्य थे। समाज सेवी लोगों की जाति शुद्र थी जो समर्पण भाव से दूसरों की सेवा मे लगे

थे, सेवा ही जिनका धर्म था। इस प्रकार के लोगों की जाति शूद्र थी। जातियां इसलिये बनी थीं कि हर प्रकार के लोगों को विकास का पूर्ण मौका मिले। इन चारों जातियों में कोई बड़ा-छोटा या ऊंचा नीचा नहीं था सब समान थे। समाज में सभी एक दूसरे के सहयोगी थे। प्रत्येक टाइप का व्यक्ति अपनी अभिरुचियों के अनुसार कार्य प्राप्त कर अपने जीवन कार्यों व विचारों में सामंजस्य स्थापित कर कार्य करता था ताकि व्यक्ति का चहुमुखी विकास हो सके।

आज यदि हम विकास की तरफ अग्रसर नहीं हैं तो वह हमारी अपनी कमजोरियां हैं। आज हम दूसरी जाति (समुदाय, के लोगों की दुर्बलताओं को देखने में लगे हैं। हम कहीं अपनी गलती मानने को राजी नहीं हैं हर इन्सान अपने को सही बताकर अपने पड़ौसी को गलत बताने में लगा है।

आपसी विद्वेष का जहर भी हमने स्वयं बोया है तो हमें काटने का काम भी हमें ही करना होगा। इस जहर को काटने कोई फरिश्ता नहीं आयेगा। हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं। संसार किसी का नहीं फिर भी प्राणी मात्र का कर्तव्य है इसे सुन्दरतम बनाने का।

इस ब्रह्माण्ड में मानव ही है जिसके पास अपना प्रकाश है, अपनी चेतना का प्रकाश। ऐसा प्रकाश जो मूर्त व सूक्ष्म जगत की प्रत्येक बात अनुभव करने की क्षमता रखता है बाहरी प्रकाश लुप्त हो सकता है। लेकिन भीतर का प्रकाश नहीं। यही वह प्रकाश है जो इस जगत में बीज रूप में व्याप्त है। प्रत्येक प्राणी इसी प्रकाश का सहारा ले अपने अज्ञान को दूर कर इस धरती के सौन्दर्य को अधिक बढ़ाने मे अपना योगदान दे सकता है।

ब्रह्माण्ड में यह जो सत्, चित, आनंद है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत में है, स्थूल से स्थूल जगत मे है। सूक्ष्म व स्थूल जो कुछ दिखाई देता है या हमारी आखो की पहुंच से दूर होने के कारण न भी दिखाई देता हो फिर भी इस जगत का जो सर्वोच्च है वही बीज रूप में सत् है।

हम बहुत-सी बार सत्य व असत्य में भेद नही कर कर पाते हमें पता ही नहीं चलता कि सत्य क्या है, असत्य क्या है क्योंकि असत्य भी हमें हमेशा सत्य के रूप में दिखाई देता है।

जैसे होली के समय बच्चे रस्सी को लेकर चला करते हैं वह कभी-कभी सांप के समान दिखाई पड़ती है। यह दिखाई पड़ना बिल्कुल असत्य है। वह सांप नही है, रस्सी ही है। इसी तरह हमें अपने समुदाय व दूसरे समुदाय की बहुत-सी बातें इस प्रकार दिखाई पड़ती हैं कि हम बहुत से असत्यों को सत्य मान लेते हैं।

एक मानव तालाब के किनारे खड़ा है। तालाब के अन्दर पानी में उस मानव का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है यद्यपि वह प्रतिबिम्ब वह मानव नहीं है लेकिन मानव के बिना वह प्रतिबिम्ब भी नही है। मानव है तभी वह प्रतिबिम्ब है। यह बिल्कुल दूसरी बात है। यह प्रतिबिम्ब जहां से आ रहा है वह एक सत्य है। ठीक उसी प्रकार शरीर, आत्मा व परमात्मा का सम्बन्ध है परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब मानव है। परमात्मा बीज है तो मानव वृक्ष है।

कभी-कभी इन्सान अपनी छाया से घबरा जाता है। ऐसे घबराये हुए लोग परछायी के साथ भी भूतों की, अन्धविश्वासों की बातें जोड़ लेते हैं। धर्म के नाम पर दंगा-फसाद करने वाले भी कहीं भीतर एक दूसरे से घबराये हुए होते हैं। ये एक दूसरे को कई बार बिना सोचे-समझे घबराकर इसलिये मार देते हैं ताकि दूसरे की मार से बच जायें। एक व्यक्ति है जो परछाई को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मान रहा है, एक अन्य उससे घबराकर उसकी तुलना भी कहीं भयभीत करने वाले नामों के साथ जोड़ रहा है। ये सारी बातें व्यक्ति के ज्ञान व अज्ञान पर निर्भर करती हैं।

प्रत्येक वस्तु को टटोलने का मानव मन प्रारम्भ अन्धकार से ही करता है। दूसरी बात, मानव के पास किसी वस्तु को आंकने का अपना पैमाना है अतः वह ब्रह्माण्ड को आंकने के लिये उसे कुछ बड़ा मान लेता है जब वह उसे आंख से नहीं देख पाता तो दूरबीन से देखने की कोशिश करता है। जब दूरबीन से भी नहीं देख पाता तो खुर्दबीन बना लेता है लेकिन हमारे वैज्ञानिक उसे भी पूरा देखना चाहते हैं जिसकी कोई सीमा नही है, फिर भी हमारी शुरुआत सीमा मे बन्ध कर ही होती है।

हम कहते हैं ब्रह्माण्ड असीम है। यद्यपि सीमा में असीम का कोई भाव नही है लेकिन हमारे शब्द असीम में भी सीमा का भाव मौजूद है। हम कितना ही सोचें हमारा विचार ऐसा होता है कि सीमा और बढा दो। यह सोचना हमारे लिये जरा मुश्किल होता है कि असीम की कोई सीमा होगी ही नही।

दूरबीन से दिखाई पड़ने वाली चीजें वही हैं जो आंख से दिखाई नहीं पड़ती थीं। दूरबीन के माध्यम से कुछ अधिक दूर तक दीख पड़ने लगा लेकिन इसका तात्पर्य यह नही कि हम किसी ऐसे सूक्ष्म को देख पा रहें हैं जो जगत का आनंद है। सूक्ष्म का शाब्दिक अर्थ ही यही है कि जो मनुष्य की इंद्रियो की सीमा मे नही आता है, नही आ सकता है और न ही उसे किसी भी यन्त्र से मानव अपनी सीमा मे ला सकता है, यहा तक की विचार भी जिसे नहीं पकड़ सकता वही सूक्ष्म है।

यह एक अलग बात है कि सूक्ष्म को पकड़ते-पकड़ते हमारी वृतियाँ ही सूक्ष्म में विलीन हो जाती हैं।

इसी तरह की एक प्राचीन साधना का प्रचलन हमारे देश में है, इसमें साधक किसी ऐसे स्थान पर बैठ कर साधना किया करता था जहा उसे आकाश की एक झलक साफ दिखाई दे। वह अपनी साधना के समय मे लगातार आकाश को देखता रहता था। आकाश को देखते समय यह भी नही सोचता था कि आकाश बहुत सुन्दर है, इन्द्रधनुष कितने मोहक हैं, बादल कैसे तैर रहे है। ऐसा कुछ न सोचते हुए दूर बादलों के पार जो आकाश है उसे देखा भर करता था। ऐसे सीमारहित आकाश को देखते-देखते साधक के मन के सारे विचार आंखों के माध्यम से आकाश मे विलीन हो जाते। विचार जब कही कुछ पकड़ पाने में असमर्थ होते तो वे स्वयं विलीन हो जाते। विचारों के साथ ही विलीन हो जाती मानव मन की वृतियां। तब वह साधक अपने भीतर बाहर उसी आकाश तत्व को महसूस करता। उसके भीतरी ब्रह्माण्ड से उसके बाहरी ब्रह्माण्ड का एक तार जुड़ जाता। वह कही सत्, चित, आनंद को महसूस करता लेकिन ऐसा भी सम्भव विचारों को पकड़ने से नही वरन् छोड़ने से होता।

यही कारण है कि वैज्ञानिकों की खोज ब्रह्माण्ड के सन्दर्भ मे सदैव अधूरी रहेगी, वे सदैव मृग-तृष्णा मे उलझे रहेंगे, वे सदैव अन्तरिक्ष की सीमाओं के पार कहीं कुछ देखना चाहेंगे जो कि देखना सम्भव नही है।

कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिकों का मानना था कि परमाणु सूक्ष्म है। फिर परमाणु के भी टुकड़े हो गये, फिर माना जाने लगा कि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्म है। जहां तक हम पहुंच गये वह सूक्ष्म नही रहा वरन् जो कुछ हमारी पहुंच से परे कही छूट गया वही सूक्ष्म है। हम कितनी ही कोशिश कर लें लेकिन सूक्ष्म परे ही रह जायेगा। एक दिन ऐसा आयेगा जब इलेक्ट्रॉन के भी टुकड़े हो जायेंगे फिर भी कुछ सूक्ष्म शेष रह जायेगा।

हमने किसी बात को समझने के लिये अपने शब्द बना रखे हैं जैसे एक शब्द है 'अज्ञात'। इस शब्द का एक अर्थ यह समझा जाता है कि जो आज हमारे लिये अज्ञात है, कल जिसे जाना जा सकता है।

इस अज्ञात शब्द का दूसरा अर्थ यह है कि अनंत मे भी इसके जाने जाने की कोई सम्भावना नहीं है। जो कुछ भी जाना जायेगा वह स्थूल होगा जैसे इलेक्ट्रॉन भी स्थूल है। जो कभी जाना ही नहीं जा सकता वह अज्ञात है।

दुनिया मे जितनी चीजें दिखायी देती हैं वह सब बिखरती रहती हैं। सबका अपना समय होता है चाहे वह मेज-कुर्सी हो, चाहे पहाड़ या चट्टान। जीवित प्राणी सब बिखर जाते हैं लेकिन जो हमें खाली–खाली-सा लगता है वह सूक्ष्म कभी नहीं बिखरता। सब कुछ बिखर जाने के बाद भी स्थूल व सूक्ष्म मे सर्वोच्च स्थान चेतना रूपी न दिखाई देने वाले बीज का ही है। बहुत से उपनिषदों में एक ही बात को दोहराया गया है कि वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है अतः पूर्ण ब्रह्म मे से यदि इस पूर्ण जगत को पृथक भी कर दिया जाये तो पूर्ण ही शेष रहता है।

जो कुछ था, है व रहेगा वह पूर्ण ही है जिसमें जोड़ने व घटाने से शेष कुछ भी नहीं बचता।

शून्य :- 0+0 = 0 शून्य

[illegible]-0[illegible]

इस पूर्ण में से कुछ निकालने का उपाय नही है। पूर्ण में कुछ जोड़ने का उपाय नही है। किसी भी प्रकार का इस पूर्ण में कहीं कोई भेद नहीं।

इस पूर्ण की इकाई मानव है। मानव भी चाहे एक समुदाय को पकडे या दूसरे समुदाय को छोड़े वह कहीं भाग कर जा नहीं सकता। जिस समुदाय को हम त्याग कर आये हैं वह भी इसी पूर्ण का एक हिस्सा है जिस समुदाय को हमने पकड़ रखा है वह भी इसी पूर्ण का एक हिस्सा है।

जहां भी हमने अपने को विभाजित मान लिया वहीं हम अधूरे हैं। हमारे लिये इस जगत में छोड़ने व पकड़ने के लिये कोई सीढ़ी नही यदि कोई है तो वह जागने की है, एक सजगता की है।

हम लोग इसी सजगता को छोड़ अपने आप को धर्म व मजहब में विभाजित कर सपने देखने मे लगे हैं। इन्ही सपनों को सत्य मान रहे हैं जबकि स्वप्न व सत्य में एक स्थिति निद्रा की होती है, एक सजगता की है।

सपने देखना एक अलग बात है, अपने सपने किसी दूसरे पर थोपना दूसरी बात है। सजग रहना इन सब बातों से भिन्न है। सजगता मे किसी भी प्रकार के सपने नहीं देखे जा सकते।

जो परमात्मा स्थूल व सूक्ष्म जगत मे कहीं भी हमें दिखाई नहीं देता या सभी जगह दिखाई देता है (एक ही बात है)। उसके लिये हमें किसी भी प्रकार का प्रयास करने की आवश्यकता नही वरन् उसके नाम पर हम जो कुछ गलत कर रहे हैं उसे छोड़ने भर की आवश्यकता है। ताकि सजगता से रह सकें अपनी भीतर की प्रज्ञा को पूरी तरह जगा सकें। प्रज्ञा प्रज्वलित होने के बाद सारे असत्य स्वतः ही गिर जायेंगे जो बचेगा वह सत्, चित, आनंद ही होगा।

फिर इस धरती पर मानव जाति का जीवन खतरे में नही रहेगा, उसके तनावों में कमी आयेगी। सभी प्रकार की सीमाएं चाहे वह धर्म से जुड़ी हो चाहे देश से, ये सभी सीमाएं मिट जायेंगी। फिर मानव का स्मृति-पटल वास्तविक समस्याओं का हल ढूढ़ने का प्रयास करेगा। जैसे हमारे ओजोन मण्डल की परत मिटती जा रही है, प्रदूषण से पर्यावरण को खतरा बढ़ता जा रहा है।

आने वाले समय में बिना युद्ध के स्वत: ही विस्फोटक वमों में विस्फोट हो सकता है । कोई भी अकेला व्यक्ति आज इस संसार को आदर्श संसार नहीं बना सकता, लेकिन हम थोड़े से लोग भी यदि सारे संसार की चिन्ता छोड़ अपने आपको परिवर्तित कर लें तो भी मानवता की बातें सार्थक हो सकती हैं। सम्पूर्ण विश्व आदर्श विश्व बनता है या नहीं यह बात उतना महत्व नहीं रखती जितना यह बात रखती है कि क्या हम स्वय जीवन में जीने की कला सीख सकते हैं व अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को प्रेम से रहना सिखा सकते हैं। यदि इतना भी हम अपने जीवन में कर लें तो बहुत है।

❀



संजीव कश्यप

जन्म : 10 सितम्बर 1960 बीकानेर, राजस्थान

लेखन : 1977 से आकाशवाणी से नियमित वार्ताओं व कविताओं का प्रसारण

प्रकाशित : 'दर्द की अमानत' (काव्य)

सम्पादन : 'सद्भावना' 'रचना' 'युग युद्ध'

प्रकाश्य : 'मन की बांसुरी'

ऐतिहासिक : 'राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार'
'दिल्ली सल्तनत का इतिहास'

सम्पर्क : कश्यप निवास, रानी बाजार,
बीकानेर (राज.)